उस्ताद ज़ौक़

और

उनका काव्य

रहता सख़ुन से नाम क़यामत तलक है ज़ौक़ ।
औलाद से तो है यही दो पुश्त चार पुश्त ॥

लेखक—
ज्वालादत्त शर्म्मा ।

उर्दू कविवचन माला नं० २

उस्ताद ज़ौक़

और उनका काव्य

लेखक—

ज्वालादत्त शर्म्मा

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी

कलकत्ता

नं० २१, सुकियास्ट्रीट्के "भोलानाथ प्रिंटिंग वर्क्स" में

बाबू एस० के० माझा द्वारा

मुद्रित।

सन् १९२४ ई०

तृतीय बार २५००] [मूल्य ॥)

सेवामें

श्रीयुत

पं० कृष्णानन्द जोशी बी० ए०, एल० टी०

मित्र,

अपने अभिन्न मित्रकी छोटी सी कृति अपनी समझ कर अपना लीजिए। अपनोंसे अधिक आवेदनकी आवश्यकता नहीं।

कृपापात्र

ज्वालादत्त शर्म्मा।

सरस्वतीमें महाकवि ग़ालिब पर जब से हमारा लेख निकला तभी से हमारे कुछ मित्र उर्दू के सुप्रसिद्ध कवियों पर वैसे लेख लिखने के लिए हमें प्रेरणा करने लगे। उनकी आज्ञा को शिरोधारण करके हमने ग़ालिब पर एक छोटीसी पुस्तिका लिखी। महाकवि ग़ालिब और उस्ताद ज़ौक़ समकालीन कवि हैं। इसी लिए ग़ालिब के बाद उस्ताद ज़ौक़ पर यह छोटा सा निबन्ध हिन्दी पाठकों की सेवा में सादर प्रस्तुत किया जाता है।

काव्य की जान रस है। किसी भाषा का हो और किसी कवि का हो, जिस काव्य में रस नहीं वह केवल शब्दाडम्बर है। नव-रस-सिद्ध कवि शब्दों को इस तरह तोल कर रखता है कि जहाँ वे प्रयुक्त होते हैं—कितना ही सोचा

जाय—उन की जगह उन से अच्छे शब्द नहीं मिलते। शब्द और भावों का यों तो सदा साथ रहता है, पर कवि अपने काव्य में अपनी प्रखर प्रतिभा और पूर्ण भाषा-विज्ञता के बल से साधारण शब्दों से असाधारण भाव पैदा कर देता है। अनोखा शब्दविन्यास ही इसका एक मात्र कारण है—यह बात साहस-पूर्वक कही जा सकती है। भारत के—क्यों—संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास ने अपने सर्वजनविश्रुत महाकाव्य रघुवंश के आदि में शब्दार्थकी प्रतिपत्तिके लिए ही ईश्वर-प्रार्थना की है। सच यह है—कवि के लिए इस से बढ़िया सम्पत्ति और कोई है भी नहीं। उस्ताद ज़ौक़ के सुयोग्य शिष्य स्वर्गीय प्रोफ़ेसर आज़ाद भी कहते हैं :—

मुझको न मुल्कसे है न जरो मालसे ग़रज़।
रखता नहीं मैं दुनियाँके जंजालसे ग़रज़ ॥१॥
है इल्तजा यही कि करम तू अगर करे।
वह बात दे ज़ुबाँमें कि दिलपर असर करे ॥२॥

काव्य की तारीफ़ में सुप्रसिद्ध उर्दू साहित्यिक, तज़करये-हज़ारदास्तां के लेखक श्रीयुक्त लाला श्रीराम एम० ए० अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'तज़करे' में लिखते हैं :—

मेरे नज़दीक जिस कलाम से दिल पर चोट लगे, जिस

बात से सोता हुआ चौंक पड़े, जो नसीहत दिल में घर करे, जो ज़िक्र नमूना बनानेका सबक़ दे, जो हिकायत शिकायतसे बचाये वही ग़िज़ाये रूह और हज़्ज़े नफ़्स है।

उस्ताद ज़ौक़ का शब्द-विन्यास बहुत ही उत्तम होता था। वे इस कला में ख़ूब पटु थे। एक ही शब्दको भिन्न-भिन्न स्थलों पर ऐसी तरकीबसे बिठाया है कि हर जगह जुदी रंगत दे रहा है। आशा है हिन्दी-भाषी सहृदय पाठक उस्ताद ज़ौक़के काव्यमें इस बातको अच्छे परिमाणमें पायेंगे।

उस्ताद ज़ौक़का जो दीवान बाज़ारमें मिलता है वह उतना प्रमाणिक नहीं है जितना कि प्रोफ़ेसर आज़ाद द्वारा सम्पादित उनका दीवान है। प्रोफ़ेसर आज़ाद की किशोर और यौवनावस्था उस्ताद ज़ौक़ के पास कटी थी। प्रोफ़ेसर आज़ादके पिता की उस्ताद ज़ौक़ से गहरी मित्रता थी, अतएव उस्ताद ज़ौक़ की शिष्य आज़ाद पर डबल कृपा थी। यही कारण है कि ज़ौक़ के विस्तृत शिष्यमण्डल में प्रोफ़ेसर आज़ाद ही अग्रगण्य हुए। प्रोफ़ेसर आज़ाद ने उस्तादके काव्य ग्रन्थको सम्पादित करके गुरुदक्षिणाका बड़ा हिस्सा चुका दिया। इस पुस्तकको प्राप्त करने में हमें बड़ी कठिनता हुई। कई पुस्तक-प्रकाशकों को लिखा—आज़ाद बुकडिपो लाहौर, एम० ए० ओ० कालिज बुकडिपो अलीगढ़ को लिखा, सब जगहों से एक ही जवाब आया—नहीं है। अन्त में, वह

पुस्तक हमें मित्रवर श्री पण्डित पद्मसिंह जी शर्म्मा से प्राप्त हुई। उनकी इस कृपाका धन्यवाद करनेके लिए ही हमने और जगह पुस्तक न मिलनेकी बात का भी उल्लेख किया है। पण्डित जीकी कृपा का हम हृदयसे धन्यवाद करते हैं।

किसरौल,मुरादाबाद।
श्रावण १९७२ वि०
२३ अगस्त सन् १९ ई०

{ ज्वालादत्त शर्मा।
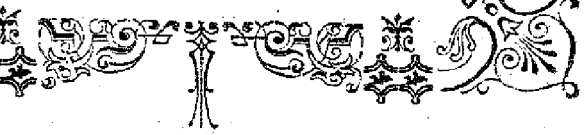
उस्ताद ज़ौक़

और

उनका काव्य।

स्ताद ज़ौक़ का जन्म हिजरी १२०४ या ईसवी
सन् १७८६ में, देहली में, हुआ था। आपके
पिता एक साधारण सिपाही थे। परन्तु
उनका अनुभव असीम था। उस्ताद ज़ौक़
होंने मुहम्मद इबराहीम रक्खा। जब पढ़ने योग्य
होंने महल्ले के एक हाफ़िज़ के पास उन्हें बिठा
उन्होंने धार्मिक शिक्षाके साथ फ़ारसी का
र साहित्य के अच्छे-अच्छे ग्रन्थ पढ़े। हाफ़िज़
ाम था—ग़ुलामरसूल। कवि थे, शाद उपनाम
ले आदमी थे। बालक इबराहीम को शाद साहब

की कविता और काव्य-चर्चा को सुन कर कविता करने का चाव पैदा हो गया। जब बड़े हुए तब कुछ कुछ कहने लगे। जो कहते शाह साहबको दिखाकर शुद्ध करा लेते।

आपके एक सहपाठी मीर काज़िम हुसैन थे—उनसे आपकी घनिष्टता थी। एक दिन उन्होंने इन्हें एक ग़ज़ल दिखाई। ग़ज़ल बहुत अच्छी थी। पूछा कब कही? उन्होंने कहा, अब हम शाह नसीरके शिष्य हो गये हैं। उन्हींसे यह ग़ज़ल ठीक कराई थी। इन्हें भी शाह साहबसे मिलनेका शौक़ हुआ। उनके साथ हो लिये। शाह साहबका शिष्यत्व इन्होंने भी स्वीकार किया। शाह साहब तात्कालिक बड़े शाइर थे। देहलीमें उनकी गर्मागर्म कविताका बाज़ार ख़ूब गर्म था। बीसियों शिष्य थे। जिस मशाअरेमें जाते थे—उस्ताद समझे जाते थे। उस्ताद ज़ौक़की काव्य-शिक्षा होती शाह साहबके यहाँ और फ़ारसी-अरबीकी उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे—उस समयके सबसे बड़े विद्वान् अबदुलरज़ाक़के पास। यहीं उनकी मित्रता पिछले दौरके सुप्रसिद्ध विद्वान् और उस्ताद ज़ौक़के कृतविद्य शिष्य स्व० प्रोफ़ेसर आज़ादके पितासे हुई जो आख़िर दम तक उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

इसी समय कुछ ऐसे कारण हुए कि आपका सम्बन्ध शाह-साहबसे छूट गया। शाह साहबके एक पुत्र थे—वे भी कविता करते थे। प्रायः उस्ताद ज़ौक़ की ग़ज़लके शेर उनकी ग़ज़लमें मिल जाते थे। शाह साहब भी इनकी ग़ज़लको कुछ अधिक

मनोयोगके साथ नहीं देखते थे—कभी कुछ कहकर टाल देते थे, कभी उनके काव्यकी निन्दा करने लगते थे। युवक इब-राहीमने गुरुकी अवहेलाको बहुत दिनों तक सहन किया, किन्तु शाह साहबकी उदासीनता और उनका पुत्र-सम्बन्धी पक्षपात दिन-दिन बढ़ता ही गया। इस लिए विवश होकर उस्तादने शाह साहबसे अपने काव्यकी 'परिशुद्धि' करानी बन्द करदी।

उस्ताद में काव्य-सम्बन्धी ज्ञान अच्छे परिमाणमें था, प्रतिभा भी थी, शब्द-योजना भी खूब करते थे, पर एक साधा-रण सिपाहीके पुत्र होनेके कारण उनकी गति न बड़े-बड़े रई-सोंमें थी और न बड़े बड़े काव्य-समाजों (मशाअरों)में, इसी लिए प्रखर प्रतिभा और अद्भुत कविता-शक्ति रखते हुए भी वे देहलीमें किसी गुम नाम परदेशीकी तरह रहते थे। एक दिनका ज़िक्र है कि ये किसी मसजिदमें उपासनासे निवृत होकर अपनी भाग्यहीनतापर विचार कर रहे थे कि वहाँ मियां कल्लू हक़ीर भी आगये। हक़ीर साहब इन्हें जानते थे—उन्होंने इन्हें शाह साहबके साथ प्रायः मशाअरोंमें देखा था और उनकी ग़ज़लें सुनी थीं। उन्होंने सुस्त होनेका कारण पूछा। इन्होंने गुरुके अकारण कोप और सकारण उदासीन-ताकी पूरी कथा उन्हें सुनादी। उन्होंने बहुत मलाल किया और कहा कि कोई ग़ज़ल तयार है? इन्होंने उत्तर दिया—हाँ। उसी दिन एक मशाअरा था। ग़ज़लको सुनकर हक़ीर साहब बहुत प्रसन्न हुए और कहा आजके मशाअरेमें इसे सुनाना।

इन्होंने कहा, ग़ज़ल पर किसी उस्तादने दृष्टि नहीं डाली है इसलिये असंशोधित ग़ज़लको मशाअरेमें पढ़ना उचित प्रतीत नहीं होता। कोई शङ्का कर बैठा तो मुश्किल होगी। हकीर साहबने उस्तादका दिल बढ़ाते हुए कहा कि तुम्हारी ग़ज़ल निर्दोष है, तुम साहस-पूर्वक इसे मशाअरेमें पढ़ो—कोई आक्षेप करेगा तो हम देख लेंगे। इनकी प्रतिभा के चमकनेका समय आगया था। ये मियाँ हकीरके साथ सभामें गये। शाह साहब भी उपस्थित थे। समय आनेपर इन्होंने अपनी ग़ज़ल सुनाई। तारीफ़का ढेर लग गया। सब लोग इनकी अद्भुत काव्य-शक्तिकी तारीफ़ करने लगे। बस, इसी दिनसे शहरमें इनकी योग्यताके डंके बजने लगे। वार-वनिताओंने उस ग़ज़लको याद करके कहीं का कहीं पहुँचा दिया।

देहलीमें अन्तिम नवाब अकबर शाह क़िलेके बादशाह थे। उनके पुत्र युवराज मिर्ज़ा अब्बूज़फ़र काव्य-प्रेमी थे और स्वयं भी कविता करते थे। बाद को यही युवराज जब बादशाह हुए तो ज़फ़रके नामसे प्रसिद्ध हुए और उर्दू-काव्य-जगत्में ख़ूब प्रसिद्धि प्राप्त की। उनकी सभामें बड़े-बड़े शाइरोंका जमाव रहता था। ख़ूब काव्य-चर्चा होती थी—ग़ज़ल पर ग़ज़ल और मिस्रे पर मिस्रा लगता था। मीर काज़िम युवराजके ख़ास मुसाहिबों में थे। उस्ताद ज़ौक़ने सोचा कि यदि क़िलेमें प्रवेश हो जाय तो काव्या-लोचनका ख़ूब अवसर मिले। क़िलेमें बिना ज़मानत और

सिफ़ारिशके किसी का प्रवेश नहीं हो सकता था । मीर काज़िम इनके मित्र थे, उन्हीं की कृपासे ये क़िलेमें दाख़िल हुए। युवराजके दरबारमें इन्हें स्थान भी मिल गया ।

युवराज की ग़ज़ल को शाह नसीर ठीक किया करते थे । वे किसी कामसे हैदराबाद दकन चले गये । अब मीर काज़िम उनकी ग़ज़लको देखने लगे। यह वह समय था कि जब जान अलफिन्स्टन साहब शिकारपुर सिन्ध से काबुल तक प्रतिज्ञापत्र लिखाने के लिए दौरा कर रहे थे। उन्हें एक मीर मुंशी की ज़रूरत थी । मीर काज़िम ने इस पद-के लिए युवराजकी सिफ़ारिश चाही और वे इस पद पर प्रतिष्ठित होगये ।

एक दिन वलीअहद तीर चला रहे थे । उस्ताद ज़ौक़ भी उसी समय वहाँ पहुँच गये। इन्हें देखकर युवराज ने कहा—"भाई इबराहीम, उस्ताद तो दकन गये, मीर काज़िम हुसेन उधर चले गये, तुमने भी हमें छोड़ दिया।" यह कह कर उन्होंने जेब में से निकाल कर एक ग़ज़ल दी और कहा—"ज़रा इसे बनादो ।" इन्होंने वहीं बैठ कर ग़ज़ल बना दी। सुन कर युवराज बहुत प्रसन्न हुए और कहा,—"कभी-कभी हमारी ग़ज़ल बना जाया करो।" कुछ दिनोंके बाद उस्ताद युवराज के काव्य-गुरु होगये ।

देहली में एक प्रसिद्ध रईस थे। नाम था—इलाहीबख़्श ख़ाँ। बूढे थे, पर काव्य-चर्चा और कविता लिखने में जवानों से

ज़ियादा जोश रखते थे। बड़े अच्छे पण्डित थे। बड़े-बड़े शाइरों से शिक्षा प्राप्त की थी। उस्ताद की तारीफ़ सुनी तो उन्हें बड़े प्रेमसे बुलाया और इनसे काव्य-सम्बन्धी परामर्श लेने लगे। एक दिन का ज़िक्र है कि उस्ताद नवाब साहब के पास बैठे हुए थे। नवाब साहब ने सदा की तरह कुछ कहने के लिए कहा। उस्ताद ने उसी दिन लिखी अपनी ग़ज़लका पहला पद्य पढ़ा—

निगहका वार था दिलपर फड़कने जान लगी।
चली थी बरछी किसीपर किसीके आन लगी॥

सुन कर बहुत खुश हुए। इसी समय उस्तादके काव्य-गुरु हाफ़िज़ ग़ुलाम रसूल भी यहाँ आ पहुँचे। उस्ताद ने उठ कर बड़े अदब से—जैसा गुरुजनों का आदर करना चाहिये—उनको सलाम किया। हाफ़िज़ साहब उस्ताद से कुछ नाराज़ रहते थे। वे कहते थे कि शागिर्द मेरा है और मुझे ग़ज़ल नहीं दिखाता। शाह-साहब ने अपनी ग़ज़लें सुनानी शुरू कर दीं। ये चुप हो गये और जाने के लिए नवाब साहब से आज्ञा चाही। नवाब साहब ने इन्हें रोका और चुपके से इनके कान में कहा—"भाई, कान बदमज़ा होगये—कोई शेर अपना सुनाते जाओ। उस्ताद ने उन्ही दिनों एक ग़ज़ल कही थी—उसके दो पद्य सुनाये—

जीना नज़र अपना हमें असला नहीं आता।
गर आज भी वह रश्के मसीहा नहीं आता॥

मज़कूर तेरी बज़्म में किसका नहीं आता।
पर ज़िक्र हमारा नहीं आता नहीं आता ॥ २ ॥

नवाब साहब के पास वे सप्ताह में दो बार जाया करते थे। नवाब साहबका सुप्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ जो दीवाने मारूफ़ के नाम से प्रसिद्ध है—उस्ताद ही का ठीक किया हुआ है।

कई वर्षों के बाद शाहसाहब हैदराबाद दकन से वापिस आये और अपनी कवि-सभा फिर स्थापित की। उस्ताद ने भी उसमें जाना शुरू किया। एक दिन शाहसाहब ने एक ग़ज़ल पढ़ी। रदीफ़ थी—आतिशो आब ख़ाको बाद। मुश्किल ज़मीन थी। शाह साहब को अपनी नौशेरों की ग़ज़ल पर बड़ा अभिमान था। उन्होंने कहा—इस ज़मीन पर जो चलेगा उसे मैं भी उस्ताद मानूंगा। इशारा उस्ताद की ओर था। उस्तादने दूसरी बैठक में ही इस ज़मीन पर ग़ज़ल पढ़ी। शाह साहब ने बहुत से आक्षेप किये। उस्ताद ने सब का समाधान कर दिया। बादशाह के यहाँ कोई जलसा होनेवाला था। उस्ताद ने उस जलसे के लिए एक कविता लिखी और इसी छन्द और क़ाफ़िये में लिखी। शाह साहब ने उस में कुछ दोष निकाले। उस्ताद ने एक दिन कवि-समाज में वह कविता सुनाई। शाह साहबके एक शिष्य ने उस पर आक्षेप किया। उसका पहला पद्य था—

सर सरो कोह में हों गर आतिशो आबो ख़ाको बाद।
आज न चल सकेंगे पर आतिशो आबो ख़ाको बाद ॥ १ ॥

विरोधी ने कहा कि पत्थर में आग की गतिका प्रमाण क्या है? उन्होंने कहा कि जब पहाड़ में बढ़ने के कारण गति है तो उसमें रहनेवाली अग्नि में भी गति होगी। विरोधी ने कहा—पत्थर में अग्नि के होने का क्या प्रमाण है? उन्होंने कहा—यह तो प्रत्यक्ष है इसमें प्रमाण की ज़रूरत क्या है? विरोधी ने कहा, किसी कवि के काव्य का प्रमाण दिये बिना आपकी बात नहीं मानी जा सकती। उन्हों ने एक शेर फ़ारसी का दूसरा उस्ताद सौदा का सुनाया।

हर संग में शरार है तेरे ज़हूरका।

प्रश्नोत्तरी को सुन कर सब आदमी चकित हो गये। उस्ताद की जय हुई। उस दिनसे उस्ताद पुराने कवियों के ग्रन्थों को और मनोयोग के साथ पढ़ने लगे।

अकबर शाहने आपकी योग्यता पर मुग्ध हो कर आपको ख़ाक़ानिये हिन्द * की उपाधि से विभूषित किया। उस समय आपकी अवस्था सिर्फ़ १९ वर्ष की थी। इस पर लोगोंमें बड़ी चर्चा हुई कि बादशाहने बूढ़े बूढ़े कवियोंको छोड़ कर एक नव-युवकको कविराज की पदवी दे डाली। पर बकौल महाकवि भवभूति—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः॥

उस समय मियाँ कल्लू हक़ीर ने भरी सभा में कहा था

* अर्थात् हिन्दका खाक़ानी। ख़ाक़ानी फ़ारसीका बहुत बड़ा कवि हुआ है

कि हमें इस बात पर आश्चर्य प्रकट न करके उस युवक कवि के काव्य को देखना चाहिए कि वह इस योग्य है या नहीं।

जब युवराज बादशाह हुए और बहादुर शाह नाम से प्रसिद्ध हुए तब उस्ताद ने कई ज़ोरदार कविताएं लिख कर बादशाहकी सेवा में पेश कीं—उन में से एक कविता के कुछ शेर सुनिए—

जाम बिलोरी में है यूँ अक्से शराबे लाला गूँ।
हो जैसे कफ़ियते फ़िज़ाँ नूरे सहर रंगे शफ़क़ ॥ १ ॥
हुसने गुले मेहताब ने जोशे गुले सैराब ने।
क्या बाग़ में चमका दिया नूरे सहर रंगे शफ़क़ ॥ २ ॥
देखे चमन में बर्गे गुल आलूदये शबनम जो कुल।
खिजलत से पानी होगया नूरे सहर रंगे शफ़क़ ॥ ३ ॥

राजगुरु की बड़ी पदवी पर अवस्थित होने पर भी आपको कई कारणों से मासिक वेतन बहुत कम मिलता था। आप यदि कभी सङ्केत से भी कह देते तो भी आपका वेतन बहुत बढ़ जाता, पर अपने साधु स्वभाव से लाचार थे, कभी आत्म-विषय में एक शब्द भी बादशाह की सेवा में नहीं कहा। कभी-कभी अपनी आर्थिक अवस्था पर दुःख होता था तो नीचे लिखा अपना शेर पढ़ देते थे और बस—

यों फिरें अहले कमाल आशुफ़्ता हाल अफ़सोस है।
ऐ कमाल अफसोस है तुझ पर कमाल अफ़सोस है ॥ १ ॥

कुछ दिनों बाद आपको ख़ान बहादुरीका ख़िताब मिला और सौ रुपये मासिक वेतन भी मिलने लगा। बाद-शाह बीमार हो कर अच्छे हुए। ख़ूब जलसे हुए। उस्ताद ने भी एक कविता लिखी। वह बादशाह को बहुत पसन्द हुई। उस पर आपको बहुत इनाम मिला। एक गाँव भी मिला। फिर आपकी आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी होगई।

आपका क़द छोटा और रंग साँवला था। चेहरे पर माता के दाग़ थे। शरीर ख़ूब मज़बूत था। प्रायः सफ़ेद वस्त्र पहनते थे और उन पर ख़ूब खिलते थे। आवाज़ बड़ी रसीली थी। कवि समाज में जब कविता पढ़ते थे, सुननेवालों को बड़ा आनन्द आता था। पढ़ने का ढँग भी ऐसा अच्छा था कि मज़मून की ख़ूबी दूनी हो जाती थी।

आपकी स्मरण-शक्ति बड़ी ग़ज़ब की थी। जो पुस्तक एक बार देख लेते थे, उसका सार-भाग हृदय पर लिख जाता था। जब उनकी अवस्था एक वर्ष की भी नहीं थी, उस समय की एक घटना भी उन्हें याद थी।

कभी अपने हाथ से किसी पशु को वध नहीं किया। दिल में दया भरी हुई थी। दूसरे की तक़लीफ़ को नहीं देख सकते थे। प्रायः टहला करते थे। मकान के सामने एक लम्बी गली थी। उसमें टहलते रहते थे। एक बार आपने उसमें एक साँप देखा, पर उसे मारा नहीं। दोस्तोंने पूछा आपने यह क्या

किया और क्या सोच कर उसे छोड़ दिया। कहने लगे—'भाई, मैंने यह सोचा कि आख़िर यह भी तो जान रखता है—क्यों मारूं ?'

एक दफ़े का ज़िक्र है कि आप एक कविता लिख रहे थे और उसके लिखनेमें तन्मय थे। ऊपर छतमें चिड़ियाँ घोंसला बना रहीं थीं—उनके तिनके बार-बार नीचे गिरते थे और वे उठाने के लिए नीचे आती थीं। उस्ताद अपने लिखने में मस्त थे। एक चिड़िया उनके सिर पर आ बैठी, आपने उड़ा दिया, वह फिर आ बैठी। आपने फिर उड़ा दी, पर वह बार-बार आकर आपके सिर पर बैठने लगी। आपने हँस कर कहा—"इस चिड़ियाने मेरे सिर को कबूतरों की छतरी बनाया है।" उस समय उनके सुयोग्य शिष्य प्रो० आज़ाद और कवि वीरान भी बैठे हुए थे। वीरान चक्षुहीन थे। उन्होंने उस्ताद की बात का मतलब न समझ कर आज़ाद से पूछा कि क्या बात है। आज़ादने कुल वृत्तान्त सुनाया। सुन कर हज़रत वीरान बोले—हमारे सिर पर तो नहीं बैठती। उस्तादने कहा—बैठे क्योंकर ? जानती है कि यह मुल्ला है, आलिम है, हाफ़िज़ है, अभी कलमा पढ़ कर बलि कर देगा और चट कर जायगा, दीवानी है जो तुम्हारे सिर पर आये।

उनकी विद्वत्ता, योग्यता और अध्ययनशीलता पर आपके सुयोग्य शिष्य क्या लिखते हैं प्रायः उन्हींके शब्दोंमें सुनिए :—

'फ़रमाते थे कि मैंने साढ़े सात सौ दीवान पुराने शाइरों के देखे और उनका खुलासा किया। खान आरज़ू को तसनीफ़ात, टेकचन्द बहार की तहक़ीक़ात और इस क़िस्म की और किताबें गोया उनकी ज़ुबान पर थीं, मगर मुझे इस बात का ताज्जुब नहीं अगर पुराने शाइरोंके हज़ारों शेर उन्हें याद थे, तो मुझे हैरत नहीं—गुफ़्तगू के वक्त जिस तड़ाके से वे शेर सनदमें देते थे, मुझे इसका भी ख़याल नहीं। क्योंकि जिस फ़न को वह लिये बैठे थे ये सब उसके आवश्यक अंग हैं। हाँ, ताज्जुब यह है कि तारीख़ (इतिहास) का ज़िक्र आये तो वह एक साहबेनज़र मुवर्रिख़ थे, तफ़सीर का ज़िक्र आये तो ऐसा मालूम होता था कि गोया तफ़सीरें कबीर देख कर उठे हैं। विशेष कर वेदान्तमें उनकी विशेष व्युत्पत्ति थी कि जब तक़रीर करते थे यह मालूम होता था कि शेख सिबली हैं या बायज़ीद बुस्तामी बोल रहे हैं + + + + रमल और ज्योतिष का ज़िक्र आये तो वह ज्योतिषी थे + + मुझे ताज्जुब यह है कि उनके मस्तिष्क में इस क़दर मज़ामीन महफ़ूज़ क्योंकर रहे। इल्मे तिब (चिकित्सा शास्त्र) खूब हासिल किया मगर काम न किया। ख़ौफ़ आता कि ऐसा न हो—बेपर्वाईसे किसी का ख़ून हो जाय।'

उस्ताद बड़े सादा मिज़ाज थे। आडम्बर बिल्कुल पसन्द न करते थे। रहनेका मकान बहुत छोटा था—इतना छोटा कि जिस के सहन में मुश्किल से एक चारपाई बिछती थी।

दिन भर पढ़ने लिखने का काम रहता था। देहली जैसे शहर में जहाँ नित नये मेले तमाशे हुआ करते थे—उस्ताद कहीं नहीं जाते—घरमें बैठे काव्य-रचना या काव्यालोचना करते रहते—नियमित समय पर या बुलाये जाने पर बादशाह की सेवामें उपस्थित हो जाते। उन्हें संसार के कामोंसे मतलब नहीं था। बक़ौल प्रोफ़ेसर आज़ाद, 'जहाँ अव्वल रोज़ बैठे वहीं बैठे और जभी उठे कि दुनियासे उठे।'

यद्यपि उस्ताद ज़ौक़ का बहुत समय बादशाह की ग़ज़लें बनानेमें लगता था, पर फिर भी उनका अपना कलाम बहुत था। सन् १८५७ ईसवी के विप्लवमें उनके काव्य का भी नाश हो गया। इस दुःखद वृत्तान्त का, इस साहित्यिक हानिका, जैसा कारुणिक वर्णन प्रोफ़ेसर आज़ाद ने अपने गुरु ज़ौक़ के जीवन-चरित्रमें किया है उसको बिना उद्धृत किये तबीयत नहीं मानती। पाठक, प्रोफ़ेसर आज़ादके भक्तिभाव भरे वर्णन को देखिए और महामना प्रोफ़ेसर की गुरुभक्ति की प्रशंसा कीजिए:—

"फ़साहतका दिल ख़ून होता है जब इनके दीवान 'मुख़्तसर पर निगाह पड़ती है। इसका बयान एक मुसीबत 'का फ़िसाना है और मरसियाख़्वानी इसकी मेरा फ़र्ज़ है। 'फ़र्माते थे कि बचपनमें जब कि १५-१६ बरस की उम्र थी, 'हमने अपना दीवान मुरत्तिब किया था और उसे बड़े शौक़से 'लिखा था।' फिर ज़माने ने फ़ुर्सत न दी। जो ग़ज़ल होती

'जुदा कागज़ पर लिखी जाती, इसी तरह ताक़में रख देते कि 'फ़ुर्सतमे नज़रसानी करेंगे। जब ताक़ भर गया तकियेके ग़िलाफ़ 'में भर दिये और घरमें भेज दिये कि अहतियातसे रखना।

* * * *

'उस्ताद की मृत्युके कुछ दिनों बाद मैं (प्रो० आज़ाद) ने 'और गुरु-भाई इस्माईल ने चाहा कि कलाम को तर्तीब दें। 'सब ज़खीरा निकाला। मेहनतने इसके इन्तख़ाबमें पसीने 'की जगह लहू बहाया, क्योंकि बचपन से लेकर दमे वापसी 'तक का कलाम उन्हींमें था और बहुत सी ग़ज़लें बादशाहों 'की बहुतेरी ग़ज़लें शागिर्दों की भी मिली हुई थीं।

'चुनांचे अव्वल उनको अपनी ग़ज़लें और क़सीदे इन्तख़ाब 'कर लिये। यह काम कई महीनोंमें ख़त्म हुआ। निदान 'पहले ग़ज़लें साफ़ करनी शुरू कीं। इस ख़ता का मुझे 'इक़रार है कि काम को मैंने जारी किया, मगर बाइतमीनान 'किया। मुझे क्या मालूम था कि इस तरह यकायक ज़माने 'का वर्क़ उलट जायगा, आलम तहो बाला हो जायगा, हसरतों 'के ख़ून बह जायँगे, दिलके अरमान दिलहीमें रह जायँगे। 'एक साथ सन् १८५७ ई० का ग़दर हो गया। किसीका किसी 'को होश न रहा। चुनांचे अफ़सोस है कि ख़लीफ़ा मुहम्मद 'इस्माईल उनके फ़र्ज़न्द जिस्मानीके साथही उनके फ़र्ज़न्द 'रूहानी (काव्य) भी दुनियासे रहलत कर गये। मेरा यह 'हाल हुआ कि फ़तहयाब लश्करके बहादुर दफ़्तन घरमें

'घुस आये और बन्दूकें दिखाईं कि जल्द निकलो। दुनिया 'आँखोंमें अन्धेर थी, भरा हुआ घर सामने था और मैं हैरान 'खड़ा था कि क्या क्या कुछ उठा कर ले चलूँ। इनकी ग़ज़लो 'के संग्रह पर नज़र पड़ी। यही ख़्याल आया कि मुहम्मदहुसेन, 'ज़िन्दगी बाक़ी है तो सब कुछ हो जायगा मगर उस्ताद कहां 'से पैदा होंगे जो ग़ज़लें फिर आकर कहेंगे। अब उनके नामकी ज़िन्दगी है तो इन पर मुनहसिर है। ये '(काव्य-सम्बन्धी ग्रन्थ) हैं तो वे मर कर भी ज़िन्दा हैं, ये गये 'तो नाम भी न रहेगा। वही संग्रह उठाकर बग़लमें मारा। 'सजे सजाये घर को छोड़ २२ नीम-जानों के साथ घरसे बल्कि 'शहर से निकला। ग़रज़ मैं तो आवारा होकर ख़ुदा जाने 'कहाँ का कहाँ निकल आया। हाफ़िज़ गुलाम रसूल 'वीरान ने शेख़ मरहूम (उस्ताद ज़ौक़) के बाज़ दर्दख़्वाह 'दोस्तोंसे ज़िक्र किया कि मसौदोंका सरमाया तो सब दिल्ली 'के साथ बरबाद हुआ। इस वक्त यह ज़ख़्म ताज़ा है अगर 'अब दीवान मुरत्तिब न हुआ तो कभी न होगा। हाफ़िज़ 'मौसूफ़को ख़ुद भी हज़रत मरहूम (उस्ताद) का कलाम 'बहुत कुछ याद था और ख़ुदा ने इनकी बसीरत की आँखें '(ज्ञानचक्षु) ऐसी रोशन की थीं कि बसारत के मोहताज 'नहीं थे। बावजूद इसके लिखने की सख़्त मुश्किल हुई। 'ग़रज़ कि एक मुशकिल में कई कई मुश्किलें थीं। उन्होंने 'इस मुहिमका सरअंजाम किया और सन् १२७१ हिजरी मे

'एक मजमूआ जिसमें अक्सर ग़ज़लें तमाम, अक्सर नातमाम, 'बहुतसे मुतफ़र्रिक़ अशआर और चन्द क़सीदे हैं छाप कर 'निकाला, मगर दर्दमन्दी की आँखोंसे लहू टपका, क्योंकि 'जिस शख़्स ने दुनिया की लज़्ज़तें, उसके मुख़्तलिफ़ मौसम 'और मौसमों की बहारें, दिन की ईदें, शबकी शब बरातें, 'बदनके आराम, दिलकी ख़ुशियाँ, तबीयतकी उमंगें सब 'छोड़ीं और एक शेर (काव्य) को लिया, जिसकी इन्तहा 'तमन्ना यही होगी कि इसकी बदौलत नाम नेक बाक़ी 'रहेगा। तबाहकार ज़मानेके हाथों आज उसकी उम्र भर 'की मेहनतने यह सरमाया दिया और जिसने अदना अदना 'शागिर्दों को 'साहबे दीवान कर दिया उसको यह दीवान 'नसीब हुआ, ख़ैर—योंही ख़ुदा चाहे तो बन्देका क्या चले। 'मेरे पास बाज़ क़सीदे हैं, अक्सर ग़ज़लें हैं ये दाख़िल हो 'जायँगी या नातमाम ग़ज़लें पूरी हो जायंगी, मगर तस्नीफ़के 'दरयामेंसे प्यास भर पानी भी नहीं।"

उस्ताद ज़ौक़की कविता में सरसता, भावों की स्वच्छता शब्दों की उपयुक्त योजना और स्पष्टता आदि विशेष गुण थे। इन्हीं गुणोंसे उनकी कविता सर्व साधारणमें ख़ूब प्रचलित हुई। उर्दूमें जैसी मुहावरेदार कविता उस्ताद ज़ौक़ की होती थी— कम कवियों की वैसी होती थी। प्रति पद्यमें भावोंकी उच्चताके साथ भाषाकी स्वच्छता और मुहावरे की ख़ूबियाँ पढ़ने वाले को मिलती हैं। उनके काव्यमें वेदान्त

के सूक्ष्म सिद्धान्तोंके साथ प्रेमके गर्मागर्म मज़मून की भी कमी नहीं होती थी। इसका विशेष कारण था। उन्हें जहाँ पुराने, बूढ़े और साधुस्वभाव कवियों की कविता ठीक करने का सौभाग्य मिलता था। वहाँ अपनी जवानीके साथ जवान बादशाह की गर्म बैठकोंमें भी भाग लेना पड़ता था। यही कारण है कि उनके काव्यमें जहाँ एक ओर त्याग, वेदान्त और ईश्वरपरायणताके भावों का प्राबल्य है; वहाँ दूसरी ओर प्रेम और यौवनकालोचित गर्मागर्म भावों का भी उसमें समावेश है। इन दोनों प्रकारोंके कुछ शेर सुनिए—

शुद्ध वेदान्त—

> दाना खिरमन है हमें क़तरा है दरिया हमको।
> आये है जुज़में नज़र कुलका तमाशा हमको॥ १॥

इसी तरह का एक शेर महाकवि मीर का सुनिए:—

> जुज़ मरतबये कुल को हासिल करे है आखिर।
> एक क़तरा न देखा जो दरिया न हुआ होगा॥ २॥

इसी बातको महाकवि ग़ालिब कुछ और ही तरहसे कहते हैं—

> इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना।
> दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना॥१॥

एक और मौक़े पर—

> क़तरा अपना भी हक़ीक़त में है दरिया लेकिन।
> हमको [illegible] तुनक ज़र्फ़िये मन्सूर नहीं॥

प्रेम-विषयक—

अजल सौ बार आई ज़ौक़ पर जब तक न वह आये ।
न पाया दम निकलने मेरा क़ाबू इसको कहते हैं ॥२॥

* * * *

कह दे शबनम से न भर सीमाब गुल के कान में ।
बुलबुले अहवाले दिल कुछ ऐ सबा कहने को हैं ॥ ३ ॥

* * * *

कहीं तुझको न पाया गर्चे हमने एक जहाँ ढूँढा ।
फिर आख़िर दिलही में देखा बग़लही में से तू निकला ॥ ४ ॥

अत्युक्ति—

दरियाये अश्क चश्म से जिस आन बहगया ।
सुन लीजियो कि अर्श का ईवान बह गया ॥ ५ ॥

व्यंगोक्ति—

ज़ाहिद शराब पीने से काफ़िर बना मैं क्यों ?
क्या डेढ़ चुल्लू पानी में ईमान बह गया ॥६ ॥

उपालम्भ—

मैं जाता हूँ जहाँ से तू आता नहीं याँ तक ।
काफ़िर तुझे कुछ ख़ौफ़ ख़ुदा का नहीं आता ॥ ७ ॥

नीति—

न छोड़ तू किसी आलम में रास्ती कि यह शै ।
असा है पीर को और सैफ़ है जवाँके लिए ॥ ८ ॥
बयाने दर्दे मुहब्बत जो हो तो क्यों कर हो ।
ज़ुबा न दिल के लिए है न दिल ज़ुबा के लिए ९

इसी ज़मीन पर महाकवि ग़ालिबके दो शेर सुन लीजिए जो उर्दू साहित्यज्ञों में ख़ूब प्रसिद्ध हैं—

गदा समझ के वह चुप था मेरी जो शामत आई।
उठा और उठके क़दम मैंने पासबाँ के लिये ॥ १॥
ज़ुबां पे बारे ख़ुदाया यह किस का नाम आया।
कि मेरे नुत्क़ ने बोसे मेरी ज़ुबां के लिये ॥ २॥

उस्तादके काव्यका बहुत बड़ा भाग बादशाह की भेंट होकर उन्हीं का हो जाता था। ग़ज़ल लिखी है, बादशाह को पसन्द आगई। अपना नाम निकाल दिया, बादशाह का उपनाम ज़फ़र शामिल कर दिया। एक जगह ख़ुद कहते हैं—

ज़ौक़ मुरत्तिब क्योंकि हो दीवाँ शिकवये फ़ुर्सत किससे करें।
बाँधे गले में हमने अपने आप ज़फ़र के झगड़े हैं॥

आप बड़े प्रत्युत्पन्नमति थे। एक बार राज-सभामें बैठे थे। एक साहब किसी बेगम की कोई बात कहने के लिए बादशाह की सेवामें उपस्थित हुए और बात कह कर चलने लगे। हकीम अहसानुल्ला साहब एक अच्छे कवि थे. वहाँ मौजूद थे। उन्होंने उनसे कहा—साहब, इतनी जल्दी? यह आना क्या था और तशरीफ़ लेजाना क्या था? यह सुन-कर उन्होंने कहा—अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले। बादशाहने उस्ताद की ओर देखकर कहा—उस्ताद, देखना क्या साफ़ मिस्रा हुआ है। उस्तादने तत्काल निवेदन किया कि हुज़ूर

लाई हयात आये क़ज़ा ले चली चले।
अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले ॥१॥

फिर इसी भूमि पर एक अच्छी ग़ज़ल लिखी—इस ग़ज़ल के दो वर्ष बाद ही उनकी इहलोकलीला पूरी होगई।

बादशाह के एक पुत्र जवानबख़्त थे, उनपर बादशाह का बड़ा स्नेह था। उनके विवाहसे कुछ दिनों पहले मिर्ज़ा ग़ालिब ने बेगम साहिबा की आज्ञा से एक 'सेहरा' लिख कर सरकारमे पैश किया। सेहरेका अन्तिम शेर था—

हम सखुन फ़हम हैं ग़ालिब के तरफ़दार नहीं।
देखें इस सेहरे से कह दे कोई बेहतर सेहरा ॥१॥

बादशाह को यह शेर बुरा लगा। उन्होंने समझा कि ग़ालिब ने यह कटाक्ष हमारे ऊपर किया है। ज़ौक़ को गुरु बनाकर मानों हमने अपनी काव्यानभिज्ञता का परिचय दिया है—काव्य समझने की योग्यता होती तो ग़ालिब को गुरु बनाते। यह सोच कर उन्हें बड़ा सन्ताप हुआ। उस्ताद तलब हुए। जब वे पहुँचे उन्होंने सब वृत्त कह सुनाया और यह भी कहा कि आप एक सेहरा अभी लिखदें। उन्होंने उसी समय सेहरा लिख दिया। वह सेहरा यह है,—

ऐ जवाँबख़्त मुबारिक तुझे सर पर सेहरा।
आज है यमनो सआदत का तेरे सर सेहरा ॥ १ ॥
आज वह दिन है कि लाये दु'रे अंजम से फ़लक।
किश्तिये ज़र में मये नो की सेहरा ।२॥

ताबशे हुस्न से मानिन्द शुआए खुरशेद ।
रुखे पुर नूर पर है तेरे मुनव्वर सेहरा ॥ ३ ॥

वह कहे सल्ले अला यह कहे सुबहान अल्ला ।
देखे मुखड़े पै तेरे जो महो अख़्तर सेहरा ॥ ४ ॥

ता बने और बनी में रहे इख़लास बहम ।
गूंधिये सूरये इख़लास को पढ़ कर सेहरा ॥ ५ ॥

धूम है गुलशने आफ़ाक़ में इस सेहरे की ।
गायें मुर्ग़ाने नवासंज न क्योंकर सेहरा ॥६॥

रूये फ़र्रुख़ पै जो हैं तेरे बरसते अनवार ।
तारे बारिश से बना एक सरासर सेहरा ॥७॥

एक को एक पर तज़ईं है दमे आरायश ।
सर पे दस्तार है दस्तार के ऊपर सेहरा ॥ ८ ॥

एक घर भी नहीं सद कान गुहर में छोड़ा ।
तेरा बनवाया है ले ले के जो गौहर सेहरा ॥ ९ ॥

फिरती खुशबू से है इतराई हुई बादे बहार ।
अल्ला अल्लाह रे फूलोंका मुअत्तर सेहरा ॥ १० ॥

सर पै तुर्रा है मज़य्यन तो गले में बिद्धी ।
कंगना है हाथ में ज़ेबा तो है सर पै सेहरा ॥ ११ ॥

रू नुमाई में तुझे दे महो खुरशेद फ़लक ।
खोल दे मुंह को जो तू मुंह से उठाकर सेहरा ॥ १२ ॥

कसरते तारे नज़र से है तमाशाइयों के।
दमे नज़ारा तेरे रूये निको पर सेहरा ॥ १३ ॥

दुरें खुश आब मज़ामीं से बना कर लाया।
वास्ते तेरे तेरा ज़ौक़ सनागर सेहरा ॥ १४ ॥

जिनको दावा है सखुन का यह सुनादो उनको।
देखो इस तरह से कहते हैं सखुनवर सेहरा ॥ १५ ॥

रंडियाँ हुज़ूरमें नोकर थीं। उन्हें सेहरा दिया गया। उन्होंने उसी दिन महफ़िल में गाया। शहर भरमें सेहरे की धूम मच गयी। महाकवि ग़ालिबको भी, सब हाल मालूम हुआ। उन्होंने सोचा, किया था कुछ और हो गया कुछ और। उसी समय एक कविता क्षमा प्रार्थनाके रूपमें लिखकर हुज़ूरमें पेश की। ग़ालिब की कविता की सभीने प्रशंसा की। उसमेंसे कुछ शेर सुनिये :—

मंज़ूर है गुज़ारिशे अहवाल वाक़ई।
अपना बयान हुस्ने तबीयत नहीं मुझे ॥ १ ॥

सौ पुश्त से है पेश-ये आबा सिपहगरी।
कुछ शाइरी ज़रिय-ये इज़्ज़त नहीं मुझे ॥ २ ॥

उस्ताद शह:से हो मुझे परख़ास का ख़याल।
यह ताब यह मजाल यह ताक़त नहीं मुझे ॥ ३ ॥

मक़्ते में आ पड़ी है सखुन गुस्तराना बात।
मक़सूद उस से क़ता मुहब्बत नहीं मुझे ॥ ४ ॥

क़िस्मत बुरी सही पै तबीयत नहीं बुरी ।
है शुक्र की जगह कि शिकायत नहीं मुझे ॥ ५ ॥

सादिक़ हूं अपने क़ौलका ग़ालिब ख़ुदा गवाह ।
कहता हूं सच कि झूंठकी आदत नहीं मुझे ॥ ६ ॥

उर्दू भाषामें क़सीदे (नख-सिख वर्णन) लिखना मुश्किल काम समझा जाता है। उर्दू कवियोंमें उस्ताद ज़ौक़ सबसे अच्छे क़सीदा-लेखक थे। वे उर्दू में इसी तरह प्रसिद्ध हैं जिस तरह फ़ारसीमें क़सीदा लिखनेके लिये अनवरी, ज़हीर, जहूरी, नज़ीरी, और उर्फ़ी। इनके क़सीदे उर्दू भाषाके साहित्य-रत्नागारमें मूल्यवान् रत्न हैं।

उस्ताद ज़ौक़ शिष्योंकी कविताको बड़ी मेहनत से ठीक करते थे। वे हर शिष्यकी ग़ज़ल को ठीक कर देते थे, पर उसके भावोंकी स्वतन्त्रता वैसीही बनी रहती थी। कविसमाजमें पढ़ते ही मालूम हो जाता था कि यह किसकी ग़ज़ल है। प्रो० आज़ाद लिखते हैं—बादशाहकी ग़ज़ल बनाते थे, वली-अहद (युवराज) की ग़ज़ल भी बनाते थे और जब जुदा-जुदा देखो तो साफ़ मालूम होता था कि यह बादशाहका कलाम है—यह वली अहद का। और हर शागिर्द का कलाम अपने अन्दाज़ पर था—बीरान अपनी जगह, दाग़ अपनी जगह और अपनी ग़ज़ल देखो तो सबसे अलग।

रमज़ानके दिनोंमें शारीरिक निर्बलताके कारण वे रोज़े

न रखते थे पर अदबके कारण किसीके सामने पानी तक न पीते थे। दवा या पानी पीना होता तो अन्दर जाकर पी आते। एक दिनका ज़िक्र है, आप बैठे लिख रहे थे और उसमे तन्मय थे। गर्मी बहुत थी, तीसरे पहर का वक़्त था। नौकरने शर्बत नीलोफ़र कटोरेमें घोल कर कोठे पर तयार किया और कहा कि ज़रा ऊपर तशरीफ़ ले चलिए। पर वे लिखनेमे ध्यानमग्न होनेके कारण उसके इशारेको नहीं समझे। पूछा क्यों? उसने संकेत द्वारा बताया, उन्होंने कहा कि ले आ यहीं। प्रौ० आज़ाद उस समय मौजूद थे। उनकी तरफ़ देखकर कहा—यह हमारे यार हैं इनसे क्या छिपाना। जब उसने कटोरा लाकर दिया तो नीचे लिखा हुआ शेर उसी समय ठीक करके कहा:—

> पिला मै आश्कारा हमको किसकी साक़िया चोरी।
> ख़ुदाकी जब नहीं चोरी तो फिर बन्देकी क्या चोरी॥१॥

दीवान चन्दूलालने हैदराबाद (दकन) से इनका कलाम सुनकर एक समस्या भेजी और बुलाया भी। आपने ग़ज़ल भेजदी, ख़ुद न गये। ग़ज़लका अन्तिम शेर था:—

> आजकल गर्चे दकन में है बड़ी क़द्रे सख़ुन।
> कौन जाये ज़ौक़ पर दिल्ली की गलियाँ छोड़ कर॥२॥

उन्होंने ५००) और ख़िलअत भेजी, पर आप वहाँ न गये।

प्रोफ़ेसर आज़ादने एक दिन वहाँ न जानेका कारण पूछा तो आपने उन्हें एक लतीफ़ा सुनाया—वह यह है,—

"कोई मुसाफ़िर दिल्लीमें महीना बीस दिन रह कर चला। यहाँ एक कुत्ता हिल गया था। वह वफ़ाका मारा साथ हो लिया। शाहदरे पहुँच कर दिल्ली याद आई, और रह गया। वहाँके कुत्तोंको देखा, गर्दनें फ़र्बा, बदन तय्यार, चिकने-चिकने बाल। एक कुत्ता इन्हें देखकर ख़ुश हुआ और दिल्लीका समझ बहुत ख़ातिर की। मिठाई के बाज़ारमें ले गया—हलवाईकी दूकानसे एक बालूशाही उड़ाकर सामने रक्खी। भटियारेकी दूकानसे एक रोटी झपटी। ये ज़ियाफ़तें खाते और दिल्लीकी बातें सुनाते रहे। तीसरे दिन रुख़सत माँगी। उसने रोका। इन्होंने दिल्लीके सैर तमाशे और ख़ूबियोंके ज़िक्र किये। आख़िर चले और दोस्तको भी दिल्ली आनेकी ताकीद कर आये। उसे भी ख़याल रहा और एक दिन दिल्लीका रुख़ किया। पहले ही मरघटके कुत्ते मुर्दार खाने वाले ख़ूनी आँखें, काले-काले मुंह नज़र आये। ये लड़ते भिड़ते निकले। दरिया मिला। देर तक किनारे पर फिरे। आख़िर कूद पड़े, मरघट पार करके पहुँचे। शाम हो गई थी। शहरमें गली कूंचोंके कुत्तोंसे बच बचा कर डेढ़ पहर रात गई थी जो दोस्तसे मुलाक़ात हुई। ये बेचारे अपनी हालत पर शरमाये। बज़ाहिर ख़ुश हुए और कहा—ओहो! इस वक्त, तुम कहाँ? दिलमें कहते थे कि रातने पर्दा रक्खा,

चर्ना दिनमें यहा क्या रक्खा था । उसे लेकर इधर उधर फिरने लगे । यह चाँदनी चौक है, यह दरीबा है, यह जामा मस्जिद है । अतिथिने कहा—यार, भूखके मारे जान निकली जाती है—सैर हो जायगी, कुछ खिलवाओ तो सही। इन्होंने कहा, तुम अजब वक्त आये हो, अब क्या करूं । सौभाग्यकी बात है कि जामा मस्जिदकी सीढ़ियों पर जानी कवाबी मिर-चोंकी हाँड़ी भूल गये थे; इन्होंने कहा—लो यार बड़ी क़िस्मत वाले हो । वह दिन भरका भूखा था मुँह फाड़कर गिरा और साथ ही मुँहसे मग़ज़ तक गोया बारूद उड़गई । छींक कर पीछे हटा । और जलकर कहा, वाह यही दिल्ली है। इन्होंने कहा—इस चटखारेके मारेही तो यहाँ पड़े हैं ।"

मिर्ज़ा फ़खरू बादशाहके पुत्र थे । उन्हें भी कवितासे शौक़ था। कुछ कहते भी थे। एक अधेड़ रंडीसे उनका सम्बन्ध था। जवानीमें वह कितने ही अमीरोंको मारकर हज़्म कर चुकी थी । मिर्ज़ा फ़खरू रंडीको नौकर रखकर उसके ग़ुलाम हो गये। उन्होंने एक दिन उस्तादको बुलाया, वे गये। एक ग़ज़ल बनवाई। उस्ताद ग़ज़ल बनाही रहे थे कि मिर्ज़ाने सन्दू-क़चेमेंसे एक तस्वीर निकाल कर उसे देखा और कहने लगे उस्ताद ज़रा इसे देखिए। उस्ताद समझ गये कि उसीकी तस्वीर है । देखकर कहा—बहुत खूब । मिर्ज़ा का जी न भरा। फिर कहा, देखिये तो सही यदि ऐसा माशूक़ हाथ लगे तो कैसा हो । उस्ताद समझे कि दिल आया हुआ है, चाहता

है कि मैं भी बुढ़ियाकी तारीफ़ करूँ। फिर भी इतना कहा कि ख़ूब, बहुत ख़ूब! उनसे फिर भी न रहा गया। तीसरी दफ़ा तस्वीर हाथमें दी और कहा—भला उस्ताद! इस रूपमें कुछ नुक़्स तो बताइये। उस्तादने देखा और कहा—ज़रा छातियाँ ढलकी हुई हैं। उस्ताद स्वयं कहते थे कि मैं न कहता मगर दिलने कहा—लड़का है और एक बेसवाके दाम में फँस गया है। कह तो दो, शायद समझ जाय। प्रो० आज़ाद कहते हैं—मैंने उस्तादसे पूछा—हज़रत, फिर मिर्ज़ा ने क्या कहा? कहने लगे—पहलूमें रखली। प्रो० आज़ाद—बारे उस बातका कुछ जवाब न दिया। फ़र्माया—"कहते क्या? पीगये।"

एक बुड्ढा चूरनकी पुड़ियाँ बेचता फिरता था और आवाज़ देता था—'तेरे मन चलेका सौदा है खट्टा और मीठा।' बादशाहने उसकी यह बात सुन पाई। कुछ पद्य लिखकर उस्ताद के पास भेज दिये। उन्होंने दस दोहरे लगा दिये। सारे शहर मे उस समय के सजीव दैनिक पत्र रंडियोंके द्वारा यह गीत फैल गया। उनमेंसे दो बन्द प्रो० आज़ाद को याद रह गये थे—वे यहाँ लिखे जाते हैं,—

ले तेरे मन चलेका सौदा है खट्टा और मीठा।

कुंजड़े की सी हाट है दुनिया जिन्स है सारी इकट्ठी।

मीठी चाहे मीठी लेले खट्टी चाहे खट्टी ॥

ले तेरे मन चले का सौदा है खट्टा और मीठा।

रूप रंग पर भूल न दिल में देख अकल के बैरी।

ऊपर मीठी नीचे खट्टी अम्बुआ की सी कैरी ॥

ले तेरे मन चले का सौदा है खट्टा और मीठा।

उस्ताद कभी किसीके दिल दुखाने वाली बात न कहते थे, मजबूरी पर ही साफ़ बात कहते थे, नहीं तो टालतेही रहते थे। एक दफ़ा क़िलेमें बैठे बादशाहकी ग़ज़ल बना रहे थे। बरसातका मौसम था। जमना चढ़ रही थीं। ये उधर को ही मुंह किये अपने काममें मग्न थे। थोड़ी देर बाद पाँवकी आहट मालूम हुई। देखा तो पीछे एक अङ्गरेज़ महाशय खड़े हैं। उस्ताद कहते हैं—मुझसे कहा—आप क्या लिखते हैं? मैंने कहा—ग़ज़ल है। पूछा—आप कौन हैं? मैंने कहा—कविता लिखकर बादशाह को आशीर्वाद दिया करता हूं। कहा—किस भाषा में? मैंने कहा—उर्दू मे। पूछा—आप क्या-क्या भाषायें जानता है? मैंने कहा—फ़ारसी और अरबी भी जानता हूं। उन ज़ुबानों में भी कहता है? मैंने कहा—कोई ख़ास मौक़ा हो तो उनमें भी कहना पड़ता है, वर्ना उर्दूमें ही कहता हूँ। क्योंकि यह मेरी अपनी ज़ुबान है। जो कुछ अपनी ज़ुबानमें मनुष्य कर सकता है ग़ैर की ज़ुबानमें नहीं कर सकता। पूछा—आप

अङ्गरेज़ी जानता है ? मैंने कहा—नहीं । फ़र्माया—क्यों नहीं पढ़ा ? मैंने कहा हमारा उच्चारण उसके उपयुक्त नहीं, वह हमें आती नहीं है । साहबने कहा—वेल, यह क्या बात है । देखिये हम आपका ज़ुबान बोलते हैं । मैंने कहा—बुढ़ापे में दूसरेकी भाषा नहीं आ सकती । बड़ी मुश्किल बात है। उन्होंने कहा—वेल, हम आपकी तीन ज़ुबान हिन्दुस्तानमें आकर सीखा । आप हमारा एक ज़ुबान नहीं सीख सकते । यह क्या बात है ? उन्होंने बातको और बढ़ाया । मैंने कहा—साहब, हम ज़ुबानका सीखना इसे कहते हैं कि उसमें बात चीत, हर तरहकी लिखा पढ़ी, इस तरह करें जिस तरह ख़ुद अहले ज़ुबान करते हैं । आप फ़र्माते हैं—अम आपका टीन ज़ुबान सीख लिया । भला यह क्या ज़ुबान है और क्या सीखना है । इसे ज़ुबान का सीखना और बोलना नहीं कहते, इसे ज़ुबानका ख़राब करना कहते हैं ।

आपका शिष्य-समुदाय ख़ूब विस्तृत था, कदाचित किसी उर्दू कविके इतने शिष्य हों । आपके शिष्योंमेंसे बड़े-बड़े योग्य कवि निकले । देहली नरेश को छोड़कर आपके शिष्योंमें सबसे अधिक लब्धप्रतिष्ठ योग्य, कवि, विद्वान, अरबी फ़ारसी और उर्दू के प्रकाण्ड पण्डित स्वनामधन्य शमसुल उल्मा मौलवी मुहम्मद हुसेन आज़ाद, प्रोफ़ेसर गवर्नमेंट कालेज लाहौर थे । प्रोफ़ेसर महोदयने अनेक ग्रन्थरत्न लिखकर उर्दू भाषाके साहित्य-कोषको कभी कम न होने वाले प्रकाशसे पूर्ण

किया है। पर "आबेहयात" लिखकर तो उन्होंने उर्दू भाषाको सचमुच "अमर" कर दिया है। आपने उस्तादके दीवानको भी बड़ी योग्यतासे सम्पादित किया है। यह छोटासा निबन्ध भी उसी ग्रन्थकी सहायतासे लिखा गया है। प्रौफ़ेसर आज़ाद की विद्वत्ता, योग्यता, गुरुभक्ति, प्रखर प्रतिभा, अद्भुत विवेचना-शक्ति की जितनी तारीफ़ की जाय कम है। जिन लोगोंने आपके अमूल्य ग्रन्थ देखे हैं वे आपकी योग्यता को अच्छी तरह जानते हैं। स्वनामधन्य प्रौ० आज़ाद और शमसुलउल्मा मौलाना हाली जैसा कर्म्मण्य, विद्वान, कवि, इतिहासज्ञ, और भाषा-तत्त्ववेत्ता जिस दिन हिन्दीमें एक भी पैदा हो जायगा उस दिन इस ग़रीबिनीके भाग्य भी खुल जायेंगे। ये हैं मुसल्मानोंके शमसुलउल्मा जो फ़ारसी और अरबी के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी मातृभाषा उर्दूसे घिन करनेकी बजाय उसके रिक्त कोषको अपनी ईश्वरदत्त शक्तियों द्वारा उपार्जित महार्घ्य रत्नोंसे भरते हैं और मातृभाषाकी सेवा करके अपने यशकी धवलपताका साहित्याकाशमें सदाके लिये फहराती हुई छोड़ जाते हैं। पर अपने यहाँके महामहोपाध्यायोंकी "रामकहानी" की बात ही न पूछिये। ये लोग हिन्दीमें लिखना अपनी हतक़ समझते हैं। उसे 'भाखा' कह कर अपनी भाषाविज्ञता की पराकाष्ठा दिखाते हैं। ईश्वर इन लोगोंको सुबुद्धि दे।

उस्ताद ज़ौकके दूसरे शिष्य जिन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा

और अद्भुत-कवित्व शक्तिसे उर्दू भाषाके आख़िरी दौर में सबसे अधिक मान और नाम पाया—वह हज़रत दाग़ हैं। दाग़की चुलबुली और भावपूर्ण कविता हिन्दुस्तानमें जहाँ जहाँ उर्दू समझी और बोली जाती है—बड़े चावसे पढ़ी जाती है। हैदराबाद दकन में वे राजकवि थे। १५००) रुपये मासिक उन्हें वेतन मिलता था। मतलब यह कि उन्होंने कवित्व शक्ति से अर्थ और यश दोनों की युगपत् प्राप्ति की थी।

इसके सिवा और भी आपके कई शिष्य बहुत योग्य कवि निकले। वीरान आदि कवियों के दीवान भी उर्दू साहित्य में ख़ूब बढ़िया ग्रन्थ हैं।

उस्ताद ज़ौक़ बादशाह के गुरु थे, राजकवि थे, अतएव उनका शिष्य होना लोग प्रतिष्ठा का कारण समझते थे, पर उनमें राज-गुरुत्व या राज-कवित्व का नाम को भी अभिमान न था। सबसे प्रेमसे मिलते और हर एक आदमी के काम में आते। मलिकुलशोरा ख़ाकानिये हिन्द ख़ान-बहादुर शेख़ इबराहीम ज़ौक़ ने संसार में अतुल यश और अमित सम्मान को पाकर ६८ वर्ष की अवस्था में इह लोक त्याग किया। मरनेसे तीन घंटे पहले यह शेर कहा था,—

कहते हैं आज ज़ौक़ जहाँसे गुज़र गया।
क्या ख़ूब आदमी था ख़ुदा मग़फ़रत करे ॥१॥

उस्ताद ज़ौक़ आज संसार में नहीं हैं पर उनकी कभी म्लान न पड़ने वाली ———— से आज भी वैसीही

मन्द सुगन्धि आरही है। अनन्त काल तक वे उर्दू के साहित्याकाश में अपनी पूर्ण प्रतिभा रूप किरणों से निरन्तर अमृत वर्षण करते रहेंगे। कवि मरता नहीं—मरता है उसका शरीर, उसकी आत्मा तो सदा उसके काव्य कलेवर में वास करके लोगोंको प्रकाश और आनन्ददान करती रहती है। ईश्वर दीन हिन्दी में भी कोई ज़ौक़ उत्पन्न कर—इस प्रार्थनाके साथ यह अल्प लेख समाप्त किया जाता है।

उस्ताद ज़ौक़

का

काव्य ।

(१)

ुराते इश्क़ पर अज़बस के है साबित क़दम मेरा ।
मे शमशेर क़ातिल पर भी खूँ जाता है जम मेरा ॥ १ ॥

ह हूँ मैं गेसुए मौजे मुहीते आज़मे वहशत ।
क है घेरे हुए रूये ज़िमीं को पेंचोख़म मेरा ॥ २ ॥

ज्ञान का पन्थ कृपाण की धारा तो है ही—पर प्रेम का
थ भी कुछ कम दुर्गम नहीं है। उस्ताद ज़ौक़ कहते है
वह मार्ग कैसा ही दुर्गम हो मेरा पाँव उस पर स
सलने वाला नहीं, मैं उसपर से डिगनेवाला नहीं। मैं तो
—मेरे खून को देखिए कि वह भी प्रेम के रंग में कैसा
ा हुआ है कि मेरे क़त्ल के समय वह क़ातिल की तलवार

से चिपट जाता है—उससे पृथक् होना नहीं चाहता—कुछ ठीक है ॥ १ ॥

मैं पागलपन के महासमुद्रकी तरंग का वह केश-पाश (गेसू) हूँ कि मेरे पेच ख़म में—मेरे घुमाव में—सारा संसार घिरा हुआ है। मतलब यह है कि मैं ऐसा पागल हूँ कि मेरे परेशान अतएव केशपाश सम भाव सारे संसार को घेर रहे हैं ॥ २ ॥

(२) वादिये ज़ुल्मत में अपनी दख़्ल कब है नूर का।
महर इक शोला सा है सोभी चिराग़े दूर का ॥ १ ॥
बलबे वहशत अब तलक भी शाख़ आहू की तरह।
पेंच खाता है धुआँ मेरे चिराग़े गोर का ॥ २॥

हमारे अन्धकार के राज्य में प्रकाश कब फटक सकता है, उसका वहाँ क्या काम? जिसे लोग दिनमणि सूर्य कहते हैं वह हमारे अन्धकार के राज्य में टिमटिमाता हुआ दीपक है ॥ १ ॥

मैं मर गया पर दीवानगी ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। मेरी समाधि पर जलने वाले दीपक का धुआँ हिरन के टेढ़े-मेढ़े सींगों की तरह अभी तक बल खाता हुआ ऊपर को चढ़ता है ॥२॥

(३) लिखिए उसे ख़त में कि सितम उठ नहीं सकता।
पर जोफ़ से हाथों में कलम उठ नहीं सकता ॥ १ ॥

परदा दरे काबा से उठाना तो है आसाँ ॥
पर परद-ये रूख़सार सनम उठ नहीं सकता ॥ २ ॥

मैं चाहता हूँ कि उसे लिख कर बताऊँ कि तेरा सितम मुझ से अब नहीं उठ सकता—पर मुश्किल तो यह है कि कमज़ोरी के मारे क़लम भी तो मेरे हाथ से नहीं उठता ॥ १ ॥

काबे के द्वार पर भी, मथुरा के द्वारकाधीश की तरह, दिन रात के बड़े भाग में परदा पड़ा रहता है—उसको हटाना एक तरह से आसान है, पर यार के चन्द्रमुख पर पड़े मेघावरण को हटाना मुश्किल नहीं असम्भव ही है।

(४) नाम मंज़ूर है तो फ़ैज़ के असबाब बना।
पुल बना चाह बना मसजिदो तालाब बना ॥ १ ॥

यदि तू चाहता है कि तेरा नाम संसार में प्रतिष्ठा के साथ लिया जाय तो तू परोपकार के काम कर अर्थात् पुल बना, कुए बना, मन्दिर बना और तालाब बना ॥ १ ॥

(५) उसे हमने बहुत ढूँढा न पाया।
अगर पाया तो खोज अपना न पाया ॥ १ ॥
जिस इन्साँ को सगे दुनिया न पाया।
फ़रिश्ता उसका हमपाया न पाया ॥ २ ॥

उसे हमने ढूँढा ही न हो—यह बात नहीं। खूब ढूंढने पर भी उसका पता न मिला। उसे ढूंढने में कभी-कभी-

हमने अपनी सत्ता को भी खो दिया। उसका मिलना तो दूर रहा—उसे ढूँढने में हम खुद अपने को ही खो बैठे ॥ १ ॥

जो मनुष्य संसार का दास नहीं—संसार का कुत्ता नहीं—वह देवताओं से कहीं ऊँचा है, देवता फिर उसकी बराबरी नहीं कर सकते। देवताओं और उस मनुष्य में क्या भेद है, जिसमें सांसारिक वासनाओं का लेश न हो—यहां के द्वंद्व का स्पर्श न हो ॥ २ ॥

(६) दांत यूं चमके हँसी में रात उस महपारा के।
मैंने जाना माहताबाँ पारा पारा होगया ॥ १ ॥
एक दम भी हमको जीना हिज्र में था नागवार।
पर उमीदे वस्ल में बरसों गुज़ारा होगया ॥ २ ॥
ज़ौक़ इस बहरे जहाँ में किश्तिये उम्रे रवाँ।
जिस जगह पर जा लगी वह ही किनारा होगया ॥ ३ ॥

उस चन्द्रमुखी ने रात को जो हँस दिया तो उसकी दन्त-पंक्ति की चमक से मुझे यह मालूम हुआ कि चन्द्रमा टुकड़े टुकड़े होगया ॥ १ ॥

उसके वियोग में एक क्षण भी ज़िन्दा रहना हमको अच्छा न लगता था; पर मिलन की मधुर आशा से, सच तो यह है, साल पर साल कटे जाते हैं ॥ २ ॥

ज़ौक़ इस परिवर्त्तनशील संसार में किसे ठिकाना बताया

जाय—संसार में गतिशील आयु रूप नाव जहाँ जा लगी वही ठिकाना हो जाता है ॥ ३ ॥

(७) नाला इस शोर से क्यों मेरा दुहाई देता।
ऐ फ़लक गर तुझे ऊंचा न सुनाई देता ॥ १ ॥
देख छोटों को है अल्लाह बड़ाई देता।
आस्माँ आँख के तिल में है दिखाई देता ॥ २ ॥
पंजये महर को ख़ूने शफ़क़ी में हर रोज़।
ग़ोते क्या क्या है तेरा दस्ते हिनाई देता ॥ ३ ॥
मुँह से बस करते न हरगिज़ ये ख़ुदा के बन्दे।
गर हरीसों को ख़ुदा सारी ख़ुदाई देता ॥ ४ ॥
देख गर देखना है ज़ौक़ कि वह परदानशीं।
दीदये रोज़ने दिल से है दिखाई देता ॥ ५ ॥

मेरे ज़ोर से चिल्लाने के कारण को जानते हो? जिस आसमान से मुझे प्रार्थना करनी पड़ती है वह मेरे दुर्भाग्य से ऊँचा सुनता है—बहरा है, इस लिये इच्छा न रखते हुए भी मुझे ज़ोरसे चिल्लाना पड़ता है ॥ १ ॥

यह मत समझो कि छोटे बड़े काम नहीं कर सकते। ईश्वर ने छोटोंको भी वह शक्ति दी है कि बड़ी से बड़ी चीज़ उनमें समा सके। दृष्टान्त—आँख के छोटे से तिलमें देखो, आस्मान जैसी चीज़ दिखाई देती है ॥ २ ॥

तेरे मेंहदी लगे लाल हाथ हमारा ही खून करत

हो—यह बात नहीं। उनकी लाली को देखकर सूर्य्य भी सुबह शाम लाल समुद्र में ग़ोते खाकर निकलता है पर फिर भी उसमें वह मनोहर लाली कहाँ ? ॥ ३ ॥

लोभी पुरुषों की बात ही मत पूछो। ईश्वर उन्हें यदि सारा संसार भी दे दे तो भी उनकी ज़ुबान से 'बस' न निकले—उनकी तृप्ति न हो ॥ ४ ॥

यदि तू उस पर्दानशीं—परदे में रहने वाले यार को सचमुच ही देखना चाहता है तो मानस चक्षु से उसको देखने की चेष्टा कर—चर्म्म-चक्षु का वह विषय बनना नहीं चाहता। भगवान् भी कहते हैं—

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥

(८) जो फ़रिश्ते करते हैं कर सकता है इन्सान भी।
पर, फ़रिश्तों से न हो जो काम है इन्सान का ॥ १ ॥
नफ़्स बे मक़दूर को क़ुदरत हो गर थोड़ी सी भी।
देखे फिर सामान इस फ़रऊन बे सामान का ॥ २ ॥
देखना ऐ ज़ौक़ होंगे आज फिर लाखों के ख़ून।
फिर जमाया उसने लाले लब पै लाखा पान का ॥ ३ ॥

देवता जो कुछ कर सकते हैं वह सब कुछ मनुष्य कर सकता है, किन्तु मनुष्य का काम करने के लिए देवताओं को भी मनुष्य बनना पड़ता है अर्थात् देवता रहकर वे मनुष्योचित

काम करने में असमर्थ हैं। इसी विषय पर उर्दू के किसी कवि का एक और शेर हमें याद है—

हमने माना हो फ़रिश्ते शैख़ जी (पर—)

आदमी होना बहुत दुश्वार है ! १ ॥

मनुष्य बहुत शक्तिहीन है—पर कहीं इसे थोड़ी सी भी शक्ति मिल जाय तो फिर इस बेसामान शैतान का तमाशा देखो—कैसे-कैसे रंग लाता है ॥ २ ॥

आज उन्होंने अपने लाल की तरह लाल ओठों पर पानका लाखा (रंग) जमाया है—आज इस लाखे से लाखों ही का ख़ून हो जायगा ॥ ३ ॥

(९) किसी बेकस को ऐ बेदाद गर मारा तो क्या मारा।
जो आपही मर रहा हो उसको गर मारा तो क्या मारा ॥ १ ॥

न मारा आपको जो ख़ाक हो अकसीर बन जाता।
अगर पारे को ऐ अकसीर गर मारा तो क्या मारा ॥ २ ॥

बड़े मूज़ी को मारा नफ़्से अम्मारे को गर मारा।
नहंगो अज़दहाओ शेर नर मारा तो क्या मारा ॥ ३ ॥

नहीं वह क़ौल का सच्चा हमेशा क़ौल दे दे कर।
जो उसने हाथ मेरे हाथ पर मारा तो क्या मारा ॥ ४ ॥

तुफंगो तीर तो ज़ाहिर न था कुछ पास क़ातिल के।
इलाही फिर जो दिल पर ताक के मारा तो क्या मारा ॥ ५ ॥

रे अत्याचारी नर, किसी बलहीन पुरुष को मारने में तू अपना क्या गौरव समझता है। जो आपही मर रहा हो उसे मारने में तेरी क्या बड़ाई है ॥ १ ॥

मारना तो आपको चाहिए था जो मर कर—भस्म होकर—अक्सीर बन जाता। पारे की भस्म तूने बनाही ली तो क्या फ़ायदा? ॥ २ ॥

अपने दिल को मार, अभिमान को मार, इसमें तेरी बड़ाई है। यदि तूने बड़े बड़े हिंस्र पशु मार ही लिये तो उनसे तेरी वीरता की सूचना नहीं मिलेगी ॥ ३ ॥

उसकी बात का मुझे विश्वास नहीं। उसने वायदा करके कभी पूरा नहीं किया है। इस लिए उसने यदि मेरे हाथ पर हाथ मारा तो इससे क्या हुआ? "हाथ पर हाथ मारना" पक्का वायदा करने की निशानी है ॥ ४ ॥

बड़ा आश्चर्य है—उसके पास न तो तीर था न पिस्तल! पर हे परमेश्वर, उसने मेरे दिल पर फिर क्या चीज़ ताक कर मारी जो मैं लोटपोट होगया ॥ ५ ॥

(१०) हो राज़ दिल न यार से पोशीदा यार का।
परदा जो दरमियाँ न हो दिल के ग़ुबार का ॥ १ ॥
है दिल की दाव घात में मिज़गाँ से चश्म यार।
करती है क़स्द टट्टी की ओझल शिकार का ॥ २ ॥

मन में मैल का परदा न पड़ा हो तो एक मित्र का रहस्य

दूसरे मित्र पर बिना खुले न रहे। मानसिक विकार ही मित्रता के लिए भारी परदा है ॥ १ ॥

यार की आँख पलक की आड़ में मेरे दिलको उड़ाने की घात में लगी हुई है। "टट्टी की आड़में शिकार खेलना" इसे ही कहते हैं ॥ २ ॥

(११) सर्द महरों से फ़लक़ डाल न पाला कि बिन आग।
नख्ल समाँज़िद्ह काँ तरह जल जाऊँगा ॥ १ ॥
आँख से अश्क सिफ़त मुझको गिराकर न सम्हाल।
मैं नहीं वह कि सम्हाले से सम्हल जाऊँगा ॥ २ ॥
जुम्बिशे बर्ग सिफ़त बाग़ जहाँ में ऐ ज़ौक़।
कुछ न हाथ आयेगा तो हाथ ही मल जाऊँगा ॥ ३ ॥

ऐ आस्मान, सर्द महरों—प्रेमरहित अतएव जड़ पुरुषों से मेरा पाला—सम्बन्ध मत डाल—यदि ऐसा हुआ तो जिस तरह बर्फ़ से पेड़ झुलस जाता है—मैं भी बिना आग के जल जाऊँगा। इस शेर में श्लेष की उत्कृष्टता के साथ उस्तादने बिना आग के जलना कितनी अच्छी तरह प्रमाणित किया है ॥ १ ॥

तू मुझे घृणा की दृष्टि से मत देख—मैं भी उस आँसू की तरह हूँ जो एक दफ़ा आँख से गिरा कर फिर नहीं सम्हाला जाता है। 'सम्हाले' से सम्हलने वाला मैं नहीं हूँ। मृत्यु से कुछ क्षण पहले रोगी की अवस्था बहुत अच्छी मालूम होने लगती है—इसी दशा का नाम "सम्हाला" है। अनुभवहीन

पुरुष समझते हैं कि रोगी की दशा अच्छी हो रही है—पर कुछ ही क्षण के बाद उसकी इह-लोक-लीला संवरण हो जाती है। उस्ताद ज़ौक़ इसी 'सम्हाले' की ओर इशारा करके कहते हैं—

"मैं नहीं वह कि सम्हाले से सम्हल जाऊँगा" ॥ २ ॥

ऐ ज़ौक़, इस संसार रूप बाग़ में यदि तेरे हाथ कुछ न आये अर्थात् कोई फल तेरे हाथ न लगे तो पत्तों की तरह हाथ ही मलते चले जाना। हाथ मलना दुःख प्रकट करने की निशानी है। शब्दालङ्कार मुलाहिज़ा हो ॥ ३ ॥

(१२) इस से तो और आग वह बेदर्द होगया।

अब आह आतशीं से भी दिल सर्द होगया ॥ १ ॥

मैंने समझा था कि मेरे रोने-धोनेसे उसका पाषाण हृदय कुछ न कुछ ज़रूर पिघलेगा—उसको ज़रूर मुझ पर दया आयेगी। पर हुआ इसका उलटा। मेरी गर्म आहों ने उसे और गर्म कर दिया—आग की तरह भड़का दिया। मुझे आज तक अपनी गर्म आहों का बड़ा भरोसा था—पर आज इस ओर से भी मेरा दिल सर्द हो गया अर्थात् दिल मुर्झा गया—एक इस अस्त्र का भरोसा था वह भी जाता रहा। इस शेर में विरोधाभास है। गर्म आहों से दिल सर्द होगया। कैसा खरा विरोध है ॥ १ ॥

(१३) पानी तबीब दे है हमें क्या बुझा हुआ ।
है दिल ही ज़िन्दगी से हमारा बुझा हुआ ॥ १ ॥
हम आप जल बुझे मगर इस दिलकी आगको ।
सीने में हमने ज़ौक़ न पाया बुझा हुआ ॥ २ ॥

हमारे प्रेम-व्याधि-जन्य रोग में हमें हकीम बुझा हुआ पानी वृथा ही देता है। हमारा तो मनही स्वयं जीवन से बुझा हुआ है ॥ १ ॥

मानसिक ताप का कहीं ठिकाना है ! मैं तो जल कर बुझ भी गया पर मन में जो भीषण अग्नि धधक रही थी—वह आज भी वैसी ही प्रचण्ड है—कुछ भी कम नहीं ॥ २ ॥

(१४) है और इल्मे अदब मकतबे मुहब्बत में ।
कि है वहाँ का मुअल्लिम जुदा अदीब जुदा ॥ १ ॥
जुदा न दर्द जुदाई हो गर मेरे आज़ा ।
हरूफ़ दर्द की सूरत हों ऐ तबीब जुदा ॥ २ ॥
हजूम अश्क के हमराह क्यों न हो नाला ।
कि फ़ौज से नहीं रहता कभी नक़ीब जुदा ॥ ३ ॥
किया हबीब को मुझसे जुदा फ़लक ने अगर ।
न कर सका मेरे दिल से ग़मे हबीब जुदा ॥ ४ ॥
करें जुदाई का किस किस की रंज हम ए ज़ौक़ ।
कि होनेवाले हैं सब हमसे अनक़रीब जुदा ॥ ५ ॥

प्रेम की पाठशाला की शिक्षा-प्रणाली ही और है। वहाँ के अध्यापक और शिक्षक भी और ही तरह के हैं। और उनकी शिक्षा और शिक्षा के फल भी विचित्र हैं ॥ १ ॥

विरह-जन्य पीड़ा मुझ से दूर होने वाली नहीं। बक़ौल डाकृर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर—मेरे शरीर का हर एक नस-रूप तार विरह का बाजा बजा रहा है। मेरे अंग शरीर से दर्द के अक्षरोंकी तरह भले ही जुदा हो जायँ, पर शरीर से दर्द का जुदा होना नितान्त असम्भव है। उर्दू भाषा में दर्द लिखते समय कोई अक्षर एक दूसरे से नहीं मिलता—सब के सब भिन्न रहते हैं। दर्द पर उस्ताद ज़ौक़ के एक शेर का उत्तर पद भी कुछ इसी प्रकार का है,—

दर्द वह शै है कि जिस पहलू से लौटो दर्द है।

मतलब यह है कि दर्द को जिस ओर से पढ़ो दर्द ही पढ़ा जाता है—अर्थात् दर्द। यहाँ पहलू शब्द श्लिष्ट है। जब किसी मनुष्य को दर्द की पीड़ा होती है तब वह जिस पहलू—करवट—से लेटता है दर्द रहता है। पहलू परिवर्त्तन दर्द के दूरीकरण में सहायक नहीं होता। इस बात को ऊपर के पद में कविने कितनी अच्छी तरह कहा है ॥ २ ॥

रोना चिल्लाना साथ ही साथ होता है—होना भी चाहिए। आसुओं की फ़ौज के साथ नक़ीब—डङ्का बजा कर सूचना देने वाले की भी तो ज़रूरत है। फ़ौज के साथ नक़ीब न हो—यह बात सम्भव नहीं ॥ ३ ॥

आस्मान, प्रारब्ध, तूने मुझसे मेरे मित्र को जुदा ज़रूर किया, पर मित्र के ग़म को तू मेरे चित्त से जुदा नहीं कर सका, यह बात तेरे अधिकार से बाहर थी। इसी तरह का भाव महाराज भर्तृहरिने अपने नीतिशतक * में प्रकट किया है—पाठकों के विनोदार्थ उसे यहाँ उद्धृत किये देते हैं,—

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव,
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
नत्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां,
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥१॥

ब्रह्मा हंस से कुपित होकर उसको कमलिनियों के वन-निवास और विलास सुखों से वञ्चित कर सकता है, पर उसमे दूध और जल को अलग-अलग कर देने की जो चतुराई है उसको, और उस चतुराई से मिलने वाले यश को—वह कुपित होकर भी नहीं छीन सकता ॥ ४ ॥

ऐ ज़ौक़, किस-किसकी जुदाई का—वियोग का—हम रंज करे—एक दिन सभी हमसे जुदा हो जायँगे। इसलिए बक़ौल भगवान् श्रीकृष्ण

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।

(२५) शुक्र परदे ही में उस बुत को हया ने रक्खा।
वर्ना ईमान गयांही था ख़ुदाने रक्खा ॥ १ ॥

---

* हमारे यहाँ "नीतिशतक" का सचित्र अनुवाद मिलता है। इस अपूर्व पुस्तक में ५०० सफे और २६ हाफटोन चित्र हैं। मूल्य ५)

बेनिशाँ पहले फ़नासे हा जो तुझको बक़ा।
वर्ना है किसका निशाँ ज़ौक़े फ़ना ने रक्खा ॥ २ ॥

लज्जा के मारे वह घर से बाहर न निकला—अच्छा ही हुआ। नहीं तो देखने वाले के ईमान के लाले पड़ जाते—ईश्वर ने बड़ी कृपा की। इस शेर में विरोधाभास है। बुत, ईमान, ख़ुदा आदि शब्द इसके द्योतक हैं ॥ १ ॥

मरने से पहले सांसारिक बन्धनों से अपने चित्त को हटाले—अमर होने की यही एक तरकीब है! वर्ना मौत किसी का निशान नहीं छोड़ती है। इसी तरह का एक और शेर सुनिए—

सर्फ़े हस्ती कर रहा हूँ वस्ल की उम्मेद पर।
बेनिशाँ हो लूँ तो फिर नामो निशाँ पैदा करूँ ॥ २ ॥

(१६) नशा दौलत का बद अतवार को जिस आन चढ़ा।
सर पै शैतान के एक और भी शैतान चढ़ा ॥ १ ॥
इश्क़ के ढब पै न कोई बजुज़ इन्सान चढ़ा।
इसके क़ाबू पै चढ़ा तो यही नादान चढ़ा ॥ २ ॥

अनुभव-विहीन और तङ्ग दिल मनुष्य पर जिस समय दौलत का नशा चढ़ गया, तब मानों शैतान के सर पर एक और शैतान चढ़ गया ॥ १ ॥

प्रेम के फन्दे में मनुष्य के सिवा और कोई न आया—यही एक नादान था जो इसके फन्दे में आगया। मनुष्य भी कैसा नादान है ॥ २ ॥

(१७) मुझको हर शब हिज्र की, होने लगी, जूँ रोज़े हश्र।
मुझ से यह किस दिन के बदले आस्माँ लेने लगा ॥ १ ॥
मौत उसको याद करती या ख़ुदा जाने कि गोर।
यूँ तेरा बीमारे ग़म जो हिचकियाँ लेने लगा ॥ २ ॥

विरह की रात्रि मेरे लिये प्रलय का दिन है—काटे से नहीं कटती। आस्माँ, मुझसे यह किस दिनके बदले ले रहा है? इस शेर में विरह की रात्रि और प्रलय के दिनमें विरोधाभास है। फिर 'किस दिन के बदले' में दिन लाकर कवि ने उस भाव को और दृढ़ किया है ॥ १ ॥

बीमार की हिचकियों पर उस्ताद ज़ौक़ कैसी अच्छी उत्प्रेक्षा करते हैं—हिचकियों के लिए एक बात मशहूर है कि जब कोई याद करता है तब हिचकियाँ आती हैं। बीमार को क्यों हिचकियाँ आती हैं—ज़ौक़ कहते हैं उसे मौत याद करती है या क़ब्र? ईश्वर ही जाने। उस्ताद ज़ौक़ के लब्ध-प्रतिष्ठ शिष्य कविवर दाग़ ने भी हिचकियों पर कितना अच्छा शेर लिखा है—पाठक पढ़िए :—

मेरे याद करने से यह मुद्दआ था।
निकल जाय दम हिचकियाँ आते आते ॥ १ ॥

१८) उतारा तूने तो सर तन से इस शामत के मारे का।
अरे अहसान मानूँ सर से मैं तिनका उतारे का ॥ १ ॥

तूने मेरा सर काटकर मेरा साधारण उपकार किया है—यह बात नहीं। मैं जीवन से दुःखी था, अतएव क़िस्सा ख़तम करके मुझे दुःखों से छुटकारा दिला दिया, इस कृपा के लिए मैं तेरा चिरबाधित हूं। तूने तो सर जैसी भारी चीज़ मेरे शरीर से उतार दी है, मैं तो जो मेरे सिर से तिनका उतारता है उसका भी अहसान मानता हूँ ॥ १ ॥

(१९) गर सियाबख़्त ही होना था नसीबों में मेरे।
ज़ुल्फ़ होता तेरे रुख़सार पै या तिल होता ॥ १ ॥
मौत ने कर दिया नाचार वगर्ना इन्साँ।
है वह ख़ुदबीं कि ख़ुदा का भी न क़ायल होता ॥ २ ॥
आप आईनये हस्ती में है तू अपना हरीफ़।
वर्ना याँ कौन था जो तेरे मुक़ाबिल होता ॥ ३ ॥
सोन-ये चर्ख़ में हर अख़्तर अगर दिल है तो क्या।
एक दिल होता मगर दर्द के क़ाबिल होता ॥ ४ ॥

मेरे भाग्य में यदि बुराई लिखी थी और इसी लिए मेरा भाग्य काला पड़ गया था, तो मुझे उसका केशदाम या उसके गौर मुख पर तिल ही क्यों न बना दिया। ये दोनों भी तो ख़ूब ही काले थे। हिन्दी के एक कविने 'तिल' पर क्या अच्छा कहा है, देखिए :—

गोरे मुख पर तिल लसत ताहि करूँ प्रणाम।
मानों चन्द्र बिछाय कर पौढ़े शालग्राम ॥ १ ॥

मनुष्य के अभिमान का कुछ ठिकाना है—किसी को कुछ नहीं समझता। मौत से यह विवश है—नहीं तो यह ईश्वर को भी नहीं मानता। उर्दू के सर्वश्रेष्ठ वर्त्तमान कवि सैयद अकबर हुसैन साहब अकबर (जज पेन्शनर) फ़र्माते हैं,—

खुदा की बाबत् भी देखता हूँ यकीन रुखसत गुमान बाकी ॥ २॥

संसार में तू ही खुद अपना प्रतिद्वन्द्वी बना हुआ है। संसार एक आईना है जिसमें तुझे अपनी ही सूरत दिखाई दे रही है पर तू समझता है कि कोई दूसरा है। इसी मिथ्या ज्ञान की बदौलत तू परेशान हो रहा है। जो तुझे यह मिथ्या ज्ञान न हुआ होता तो संसार में तेरा जवाब फिर कोई न होता—तू निस्सन्देह अद्वितीय होता।

महाकवि माघ ने भी सेनावार वर्णन करते हुए एक ऐसे हाथी का वर्णन किया है जो जल पीते समय अपने प्रतिबिम्ब को ही दूसरा हाथी समझ कर लड़ने लगा था—वह श्लोक यह है—

आत्मानमेव जलधेः प्रतिबिम्बितांग—
भूमौ महत्यभिमुखा पतितं निरीक्ष्य।
क्रोधादधावदयभीरभि हन्तुमन्य—
नागाभि युक्त इव युक्त महोमहेभः

आस्मान के हृदय में यदि हर तारा दिल है—तो कुछ भी नहीं—इतने दिल होकर उसके यदि एक दिल होता पर होता दर्दमन्द—दूसरे के सुख-दुःखको अनुभव करने वाला—तो ठीक था ॥४॥

(२०) अजल आई न शबे हिज्र में और तूने फ़लक।
बे अजल हमको तमन्नाए अजल में मारा ॥ १ ॥
आँख से आँख है लड़ती मुझे डर है दिलका।
कहीं यह जाय न इस जंगो जदल में मारा ॥ २ ॥
न हुआ पर न हुआ मीर का अन्दाज़ नसीब।
ज़ौक़ यारों ने बहुत ज़ोर ग़ज़ल में मारा ॥ ३ ॥

ऐ आस्मान, विरहकी रात्रि में मौत न आई, पर तूने मौत की चाह में हमें बे मौत ही रात भर मारा ॥ १ ॥

उनकी आँख से जब मेरी आँख लड़ती है तब मुझे दिलका डर रहता है। कहीं यह ग़रीब इन शोख़ आँखों की लड़ाई में बे-मौत न मारा जाय ! २ ॥

न हुआ, मीर का अन्दाज़ नसीब न हुआ। ज़ौक़, मित्रों ने पद्य-रचना में बहुतेरा बल लगाया पर वह बात हाथ न लगी। इस शेर द्वारा उस्ताद ज़ौक़ ने महाकवि ग़ालिब की तरह उर्दू भाषा के लब्धप्रतिष्ठ सुकवि मीर में अपनी भक्ति प्रकट की है। मिर्ज़ा ग़ालिब का वह शेर यह है:—

अपना भी यह ही अक़ीदा है बक़ौले नासिख़ ।
आप बे बहरा है जो मौतक़िदे मीर नहीं ॥ ३ ॥

(२१) क्या जाने उसे वहम है क्या मेरी तरफ़से ।
जो ख़्वाब में भी रात को तनहा नहीं आता ॥ १ ॥
मैं जाता जहाँ से हूँ तू आता नहीं याँ तक ।
काफ़िर तुझे कुछ ख़ौफ़ ख़ुदा का नहीं आता ॥ २ ॥
दुनिया है वह सय्याद कि सब दाम में इसके ।
आजाते हैं लेकिन कोई दाना नहीं आता ॥ ३ ॥
क़िस्मत से हो लाचार हूँ ऐ ज़ौक़ वगर्ना ।
सब फ़न में हूँ मैं ताक़ मुझे क्या नहीं आता ॥ ४ ॥

न मालूम क्यों वह मेरो तरफ़ से इस क़दर संशित है कि स्वप्न में भी अकेला नहीं आता ॥ १ ॥

(तेरो मुहब्बत में) मैं तो संसार से चलने को तय्यार हूँ पर तुझ से यहाँ तक भी नहीं आया जाता । मेरे ऊपर कृपा न सही पर ईश्वर का भय तो कर—उससे तो डर ॥ २ ॥

दुनिया एक ऐसा जाल है जिसमें प्रायः सभी फसे हुए हैं—कोई दाना अर्थात् विचारशील पुरुष हो इस जाल से बचा हुआ है । जाल के साथ,दाना लाकर उस्ताद ने शेर में "ख़ूबी" पैदा कर दी है ॥ ३ ॥

भाग्य से हो लाचार हूँ । वर्ना कौन सा फ़न है जिसको

अच्छी तरह नहीं जानता—मुझे क्या नहीं आता अर्थात् सभी कुछ आता है ॥ ४ ॥

(२२) न क्यों तेरे दाँतों से झूटा हो मोती ।
कि दावो किया था सफ़ाईका झूटा ॥ १ ॥
ख़ुदा जाने है ज़ौक़ झूटा कि सच्चा ।
नहीं है वले आशनाई का झूटा ॥ २ ॥

तेरे दाँतोंके सामने मोतीको झूठा बननाही पड़ता—उसने सफ़ाई का झूटा दावा किया था । तेरे दाँतों की सफ़ाई को मोती बेचारा क्या पहुँच सकता है—यह भाव ॥ १ ॥

ईश्वर जाने ज़ौक़ सच्चा है या झूटा—पर मित्रता का वह पक्का है—यह बात झूटी नहीं है ॥ २ ॥

(२३) ज़ाहिद शराब पीने से काफ़िर बना मैं क्यों ?
क्या डेढ़ चुल्लू पानी में ईमान बह गया ॥ १ ॥

कर्म्मकाण्डिन, यह तो बताइए कि मैं शराब पीने से काफ़िर किस तरह बन गया—क्या डेढ़ चुल्लू पानी में ही ईमान बह गया ! १ ॥

(२४) आँखें मेरी, तलुओं से वह मल जाये तो अच्छा ।
यह हसरते पाबोस निकल जाये तो अच्छा ॥ १ ॥
जो चश्म कि बे नम हो वह हो कोर तो बहतर ।
जो दिल कि हो बे दाग़ वह जल जाये तो अच्छा ॥ २ ॥

बीमारे मुहब्बत ने लिया तेरे सम्हाला ।
लेकिन वह सम्हाले से सम्हल जाय तो अच्छा ॥ ३ ॥

हो तुझ से अयादत जो न बीमार की अपने ।
लेने को खबर उसकी अजल आये तो अच्छा ॥ ४ ॥

फ़ुरक़त में तेरी तारे नफ़स सीने में मेरे ।
काँटा सा खटकता है निकल जाये तो अच्छा ॥ ५ ॥

दिल गिर के नज़र से तेरी उठने का नहीं फिर ।
यह गिरने से पहले ही सम्हल जाये तो अच्छा ॥ ६ ॥

मेरी आँखों को वह अपने तलुओं से मल जाय तो बहुत अच्छा हो। उसके पाँव चूमने की इच्छा बहुत दिनों से मुझे है—वह पूरी हो जायगी ॥ १ ॥

जिस आँख में प्रेम के आँसू नहीं आते वह गड्ढे की समान है और जिस मन में प्रेम का दाग़ नहीं वह जल जाय तो अच्छा ॥ २ ॥

तेरे प्रेम का बीमार सम्हलता है—पर इस सम्हाले से बच जाय तो अच्छा है ॥ ३ ॥

जिस अपने बीमार की तू देख-भाल न कर सके उसकी ख़बर लेने के लिए यदि मृत्यु आये तो अच्छा ॥ ४ ॥

तेरे वियोग में मेरे प्राण काँटे की तरह मेरे सीनेमें खटक रहे हैं—किसी तरह यह काँटा निकल जाय तो अच्छा ॥ ५ ॥

देख, मेरे दिलको अपनी नजर से मत गिरा, गिर जावे

पर यह न सम्हलेगा, इससे गिरने से पहले इसका सम्हल जाना अच्छा है ॥ ६ ॥

(२५) कहे है ख़ंजरे क़ातिल से यह गुलू मेरा।
कभी जो मुझ से करे तो पिये लहू मेरा ॥ १ ॥
मुझे वह पर्दानशीं सामने कब आने दे।
जो ज़िक्र करने न दे अपने रोबरू मेरा ॥ २ ॥

यार की तलवार से मेरा गला यह कहता है कि तू मेरे हक़ में कभी न करना—ऐसा करने से तुझे मेरा लहू पीना होगा ! ॥ १ ॥

वह पर्दाप्रिय प्रेमिका मुझे अपने सामने कब आने देती है—वह तो मेरा ज़िक्र भी अपने सामने नहीं होने देती ॥ २ ॥

(२६) हमने जाना था कि क़ासिद जल्द लायेगा ख़बर।
क्या ख़बर थी जाके वाँ ख़ुद बे ख़बर हो जायगा ॥ १ ॥
शक्ल तो देखो मुसव्विर खींचेगा तसवीरे यार।
आपही तसवीर उसको देखकर हो जायगा ॥ २ ॥

हमने पत्र-वाहक को इस लिए भेजा था कि वहाँ से वह शीघ्र समाचार लायेगा। पर यह क्या ख़बर थी कि वह ख़ुद वहाँ जाकर बे ख़बर हो जायगा। इसी तरह का भाव संस्कृतके किसी कविने बाँधा है। वह कहता है कि मैंने अपने मनको नपुंसक जानकर (क्योंकि व्याकरणमें मनस् शब्द नपुंसक लिङ्ग ही है) अपनी प्रियाके पास भेज दिया था पर वे हज़-

रत वहीं जाकर रम गये—फिर वापिस ही न आये। वाह पाणिनि! तुमने हमें खूब धोखा दिया! भला हो तुम्हारा!!

नपुंसकमिति ज्ञात्वा प्रियायै प्रेषितं मनः।

तत्तुतत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम् ॥ १ ॥

ज़रा चित्रकार की सूरत तो देखिये, ये मेरे मित्र की तस्वीर खींचने चले हैं। जब तक उसे नहीं देखा है तभी तक तस्वीर खींचने का दम भरते हैं। उसे देखकर तो यह स्वयं तस्वीर की मानिन्द खिंच जायगा। उसे देखकर आश्चर्य में डूब जायगा। महाकवि ग़ालिब ने भी इसी विषय पर कितना अच्छा कहा है—

नक्श को उसके मुसव्विर पर भी क्या क्या नाज़ है।

खींचता है जिस कदर उतना ही खिंचता जाये है ॥

---

* वह तो मूर्तिमान बेपरवाही और खिंचावट है ही, पर उसके नक्श को देखिए कि खिंचावट में वह भी किसी से कम नहीं। उसका चित्र भी चित्रकार से उतना ही खिंचता जाये है जितना कि वह उसे खींचता है।

(२७) आना तो खफ़ा आना जाना तो रुला जाना ।

आना है तो क्या आना जाना है तो क्या जाना ॥ १ ॥

क्या तबअ में जौदत है चट दिलकी उड़ा जाना ।

होटों का यहाँ हिलना वहाँ बात का पाजाना ॥ २ ॥

पहले तो वह आता ही नहीं और जो आता है तो ग़ुस्सेमें भरा हुआ। जब जाता है तो रुला जाता है। उसका ऐसा आना और जाना क्या "आनाजाना" कहा जाने योग्य है ? १ ॥

उसकी बुद्धि की प्रखरता को तो देखो कि मेरे दिलकी बात को योंही पा जाता है—मेरे होंठ हिले नहीं और उसने मेरे मनकी बात समझी नहीं ॥ २ ॥

(२८) हाथ आकर दिले वहशी जो कोई छूट गया ।

हविसे सैद से सय्याद का जी छूट गया ॥ १ ॥

उसके हाथ से किसी मतवाले का दिल क्या निकल गया मानो लोभी शिकारी के हाथ से कोई शिकार निकल गया। इधर दिल निकल गया उधर लोभ के मारे उसका दिल भी छूट गया—मतलब है खिन्न हो गया—अप्रतिभ हो गया ॥ १ ॥

(२९) अहदे पीरी ने भुलाया दौड़ चलना कूदना ।

हाय तिफ़ली खेलना खाना उछलना कूदना ॥ १ ॥

बुढ़ापे ने दौड़ना और कूदना सभी भुला दिया। बचपन के वे दिन कहाँ गये जब सिवाय खाने, खेलने, उछलने और कूदनेके और कोई काम ही नहीं था ॥ १ ॥

(३०) मसजिद में उसने हमको आँखें दिखाके मारा।
काफ़िर की देखो शोखी घरमें खुदा के मारा ॥ १ ॥

उसने हमें मन्दिर में—औरभी कहीं नहीं—दृग्बाण से बेंध दिया—उसकी शोखी तो देखिए कि उसने ईश्वर के स्थान में हमें मारा ॥ १ ॥

(३१) कुछ राज़ निहाँ दिलका अयाँ हो नहीं सकता।
गूंगे का सा है ख्वाब—बयाँ हो नहीं सकता ॥ १ ॥

मेरे मनका भीतरी रहस्य खुल नहीं सकता—कहा नहीं जा सकता। वह तो गूंगे का सपना है जो बताया नहीं जा सकता ॥ १ ॥

(३२) दूर रह और देर मत रह—सामने मिस्ले हलाल।
शहर में तुझको अगर है अपनी शोहरत की तलब ॥ १ ॥

दोयज के चन्द्रमा की तरह तू दूर रह और बहुत देर तक दिखाई मत पड़—यदि तू शहर में अपनी प्रसिद्धि चाहता है ॥ १ ॥

(३३) मालूम जो होता हमें अञ्जामे मुहब्बत।
लेते न कभी भूलके हम नामे मुहब्बत ॥ १ ॥
है दाग़े मुहब्बत दिरमो दामे मुहब्बत।
मुज़दा तुझे ऐ ख्वाहिशे इनआमे मुहब्बत ॥ २ ॥
की जिससे रहो रस्म मुहब्बत उसे मारा।
पैग़ामे क़ज़ा है तेरा पैग़ामे मुहब्बत ॥ ३ ॥
मैराज समझ ज़ौक़ तू क़ातिल की सनां को।
चढ सर के बल इस ज़ीने से ता बामे मुहब्बत ॥ ४ ॥

यदि हमें प्रेम का परिणाम पहले से मालूम होता तो कभी भूलकर भी हम प्रेम का नाम न लेते ॥ १ ॥

दिलके दाग़ ही मुहब्बत के सिक्के हैं। ऐ पुरस्कार चाहने-वाली तबीयत, तुझे इस दौलत के लिए बधाई है ॥ २ ॥

जिससे प्रेम किया उसे ही मारा—प्रेम की पाती क्या मृत्यु का पूर्वरूप है ? ॥ ३ ॥

ऐ ज़ौक़, क़ातिल की तलवार को तू अपना सहायक समझ। यह मुहब्बत का ज़ीना है—इस ज़ीने पर तू सिरके बल चढ़ जा ॥ ४ ॥

(३४) दीदये आबल-ये पा का यही है रोना।

कि न पहुँचा हो कहीं मुझसे किसी ख़ार को रंज ॥ १ ॥

जाबजा कोह के चश्मों से रवाँ हैं आँसू।

है जो ना कामि-ये फ़रहाद का कोहसार को रंज ॥ २ ॥

राहतो रंज ज़माने में हैं दोनों लेकिन।

याँ अगर एक को राहत है तो है चार को रंज ॥ ३ ॥

मेरे पाँवमें पड़े छाले की आँख से जो आँसू जारी हैं—समझते हो क्यों हैं ? उसको यह खटका है कि कहीं मुझसे जङ्गल के किसी काँटे को तकलीफ़ न पहुँची हो। इसीलिए रो रहा है। कितना बारीक भाव है। क्या शायराना नाज़ुक-ख़याली है ॥ १ ॥

फरहाद दूध की नदी लेने के लिए पहाड़ पर गया था ॥

वहां से शीरीं के मकान तक जभी वह नदी लाया तभी शीरीं का देहावसान हो गया। यह सुनकर पहाड़ भी अपनी झरने रूप आँखों से फ़रहाद की विफलता के लिए आँसू बहा रहा है ॥ २ ॥

निस्सन्देह संसार में सुख और दुःख दोनों ही हैं—पर बहुलता दुःख की ही है—क्योंकि चार दुःखियों में मुश्किल से एक सुखी मिलता है ॥ ३ ॥

(३५) बीमारे इश्क़ का जो न तुझसे हुआ इलाज।
कह ऐ तबीब तू ही कि फिर तेरा क्या इलाज ॥ १ ॥

प्रेम के रोगीकी यदि तुझसे चिकित्सा न हुई तो फिर ऐ प्रेम-व्याधि के अस्पताल के डाक्टर—तूही बता तेरा क्या इलाज है या तू किस मर्ज़ की दवा है ॥ १ ॥

(३६) रेशे सफ़ेद शैख़ में है ज़ुल्मते फ़रेब।
इस मक्र चाँदनी पै न करना गुमान-ए सुबह ॥ १ ॥

शेख़ की सफ़ेद दाढ़ी में कपट क अन्धकार छिपा हुआ है—इस झूँठी चाँदनी पै प्रातःकाल की सफेदी का धोखा मत खाना ॥ १ ॥

(३७) उस बद मुआमले से भला क्या मुआमला।
किस बद सलाह नें तुझे दी यह दिला सलाह ॥ १ ॥
ज़ाहिद यह क्या कहा कि न मिल इन बुतों से तू।
देता है ऐसी कोई भी मर्दे ख़ुदा सलाह ॥ २ ॥

याख हो दिलकी ख़ैर कि कुछ कर रहे हैं आज।
चश्मो निगाह मश्वरा नाज़ो अदा सलाह ॥ ३ ॥

उस बद मुआमले से—व्यवहार। दुष्ट से कैसा व्यवहार! किस बद-सलाह ने तुझे ऐसा करने का परामर्श दिया है। प्रेम के मामलों में सिर्फ दिल ही अपना परामर्शदाता है। उससे इस तरह परामर्श रहता है जिस तरह एक मित्र दूसरे मित्र से सलाह करता है ॥ १ ॥

भक्त मनुष्य, क्या कहा तूने कि मैं इन बुतों—जिनमें मेरा दिल लगा हुआ है—से न मिलूँ। अरे भाई, ऐसी बुरी सलाह कोई भी भला आदमी देता है॥ २ ॥

हे ईश्वर, आज दिलकी कुशल नहीं। आज उसकी आँखें और दृष्टि कुछ मशवरा कर रही हैं—यही नहीं नाज़ो अदा—हाव भाव—भी कुछ सलाह कर रहे हैं ॥ ३ ॥

(३८)फिर आया वह लो निगारे ख़ूनी इधरको सरगर्म जंग होकर।
कि जिसके हाथोंसे उड़ गये सर हज़ारों मेंहदीका रङ्ग होकर॥१॥
हलावते शर्मो पासदारी जहाँ में है ज़ौक़ रञ्जो ख्वारी।
मज़े से गुज़री अगर गुज़ारी किसी ने बे नामो नंग होकर॥ २ ॥

अब ठीक नहीं है। रक्तप्रिय मित्र की अब इधर को भी नज़र पड़ी है। अब वह इधर को युद्ध के लिये तयार होकर आरहा है। उसने हज़ारों ही सिर अपने हाथ से मेंहदी के रङ्ग की तरह उड़ा दिये हैं॥ १ ॥

संसार में दूर रहना ही अच्छा। यहाँ के सम्बन्धों की जड़ों में दुःख और क्लेश ही भरा हुआ है। जिसने संसार में चुपचाप अपनी ज़िन्दगी गुज़ार दी—सच तो यह है उसने अच्छी गुज़ार दी ॥ २ ॥

(३९) कहा पतंग ने यह दारे शमा पर चढ़ कर।
अजब मज़ा है जो मर ले किसी के सर चढ़कर ॥ १ ॥
दिखा न जोशो ख़रोश इतना ज़ोर पर चढ़कर।
गये जहान में दरिया बहुत उतर चढ़ कर ॥ २ ॥

दीप के सिर पर चढ़कर पतङ्ग कहता है, कि किसी के सिर पै चढ़कर मरने में कुछ अद्भुत ही आनन्द है ॥ १ ॥

अपनी उन्नति पर इतना मत इतरा। संसार में बहुत से दरिया चढ़कर उतर गये ॥ २ ॥

(४०) मुझसा मुश्ताक़े जमाल एक न पाओगे कहीं।
गर्चे ढूंढोगे चिराग़े रुखे ज़ेबा लेकर ॥ १ ॥
तेरे पुरज़े न किये ख़त की तरह ऐ क़ासिद।
शुक्र कर छोड़ दिया उसने नविश्ता लेकर ॥ २ ॥
वाँ से याँ आये थे ऐ ज़ौक़ तो क्या लाये थे।
याँ से तो जायँगे हम लाख तमन्ना लेकर ॥ ३ ॥

तुम अपने सौन्दर्य का मुझ सा भक्त संसार में कहीं न पाओगे। भले ही तुम अपने दीपक सम उज्ज्वल कपोल लेकर सारा संसार ढूंढ़ डालो ॥ १ ॥

ऐ पत्र-वाहक, मेरे पत्रको उसने टुकड़े-टुकड़े कर दिया, पर कुशल तो यह हुई कि उसने तेरे टुकड़े न कर डाले—तुझे साबित छोड़ दिया ॥ २ ॥

ऐ ज़ौक़, जब संसार में आये थे तो क्या लाये थे—कुछ भी नहीं, पर जब यहाँ से जायँगे तब असंख्य वासनाओं का बोझा सिर पर लदा होगा ॥ ३ ॥

(४१) कल गये तुम जिसे बीमारे हिजराँ छोड़कर।
चलबसा वह आज सब हस्ती का सामाँ छोड़कर ॥ १ ॥
तिफ़्ल अश्क ऐसा गिरा दामाने मिज़गाँ छोड़कर।
फिर न उट्ठा कूचये चाके गिरेबाँ छोड़कर ॥ २ ॥
गर्चे है मुल्के दकन में इन दिनों क़द्रे सखुन।
कौन जाये ज़ौक़ पर दिल्ली की गलियाँ छोड़कर ॥ ३ ॥

कल तुम जिसे विरह-व्यथा का रोगी छोड़कर गये थे आज वही संसार का सब सामान छोड़ कर चल बसा ॥ १ ॥

बालक आँसू अपनी मातृरूप पलकों का पल्ला छोड़कर ऐसा गिरा कि फिर फटे हुये दामन के कूचे से न उठा ॥ २ ॥

निस्सन्देह दक्षिण (मतलब है हैदराबाद दकन से) में काव्य की क़द्र है पर ज़ौक, दिल्ली की गलियाँ नहीं छूटतीं। इन्हें छोड़कर वहाँ नहीं जाया जाता ॥ ३ ॥

(४२) मैं तो उसी झिझक पै फ़िदा हूँ कि कान को।
शब क्या हटा लिया मेरे लाकर दहन के पास ॥ १ ॥

मैंने कहा कि बोसा तुम्हीं दो अदब से मैं।
ला सकता अपना मुंह नहीं चाहे ज़क़नके पास ॥ २ ॥
हँस कर कहा कि जाता है प्यासा कुएँ पै आप।
या जाता है कुआँ किसी तिश्ना दहन के पास ॥ ३ ॥

मुझे उनका वह हाव कितना अच्छा मालूम हुआ कि उन्होंने अपने कान को मेरे मुँह के पास लाकर हटा लिया! इसी अदा पर मैं फ़िदा हो गया ॥ १ ॥

मैंने कहा कि आप ही मुझे बोसा दीजिए। मैं चाहे ज़क़न (ठोड़ी के गड्ढे) के पास स्वयं जाने की हिम्मत नहीं करता। यह सुन कर वे हँसे और बोले कि सदा प्यासा ही कुएँ के पास जाता है—कुआँ प्यासे के पास नहीं आता ॥ २—३ ॥

(४३) इश्क़ का जोश है जब तक कि जवानी के हैं दिन।
यह मरज़ करता है शिद्दत इन्हीं अय्याम में ख़ास ॥ १ ॥

प्रेम रूप व्याधि के उभर आने का खटका जवानी में ही रहता है। ये दिन ही इस बीमारी के लिए ख़ास हैं ॥ १ ॥

(४४) पर कतरने को जो सय्याद ने चाही मिक़राज़।
हाथ मलती थी मेरे हाल पर क्याही मिक़राज़ ॥ १ ॥
पास क्या क़ता तमाल्लुक़ में कि यकसाँ समझे।
क़ता में जाम-ये दरवेशि ओ शाही मिक़राज़ ॥ २ ॥

पक्षी को चिड़ीमारने पकड़ कर जब उसके पर काटने चाहे तब कैंची भी उसके बुरे हाल पर हाथ मलने लगी। हाथ मलने से मतलब है कैंची के फलोंके आपस में मिलने से। कैसा अनोखा भाव है। क्या बात पैदा की है ॥ १ ॥

जब सम्बन्ध छोड़ना ही ठहरा तो सब एक से हैं। त्याग के बाद छोटे बड़े का भेद नहीं रहता। इसमें दृष्टान्त—कैंची को देखिये कि वह भी जब 'क़ता' (त्याग) करने लगती है तब चाहे शाही पोशाक हो या फ़क़ीर की गुदड़ी सभी को काट देती है ॥ २ ॥

(४५) फिर कर इधर उधर भी न अपना गया कलक़।
लफ़्ज़े क़लक़ की तरह से योंही रहा क़लक़ ॥ १ ॥

इधर उधर घूम कर भी हमारा क़लक़ दूर न हुआ। वह क़लक़ शब्द की तरह ज्योंका त्योंही रहा। अर्थात् क़लक़ को किसी तरफ़ से पढ़ो क़लक़ ही पढ़ा जायगा।—क़लक़—! १ ॥

(४६) जो खुल कर उनकी ज़ुल्फ़ें बाल आयें सरसे पाऊँ तक।
बलायें आके लें सौ सौ बलायें सरसे पाऊँ तक ॥ १ ॥
हम उनकी चाल से पहचान लेंगे उनको बुर्क़े में।
हज़ार अपने को वह हमसे छिपायें सरसे पाऊँ तक ॥२॥
मेरा दिल एक दू उस खुशअदा की किस अदा को मैं।
कि हैं वाँ तो अदायें ही अदायें सरसे पाऊँ तक ॥ ३ ॥

सरापा पाक हैं धोये जिन्हों ने हाथ दुनिया से।
नहीं हाजत कि वह पानी बहायें सरसे पाऊँ तक ॥ ४ ॥
मज़ा इतनाही ज़ौक़ अफ़ज़ूँ हों—जितने ज़ख़्म अफ़ज़ूँ हों।
न क्यों हम ज़ख़्म तेग़े इश्क़ खायें सरसे पाऊँ तक ॥ ५ ॥

यदि वे अपने केशोंको खोल दें तो निस्सन्देह उनके केश पाँव तक आ जायँ। उस शोभा पर बलायें ख़ुद आकर उनकी सौ सौ बलायें सिरसे पाँव तक लेंगी ॥ १ ॥

वे हमसे छिपनेके लिये सिर से पाँव तक कपड़ा—बुर्क़ा ओढ़ लें, पर हम उनकी चालसे पहचान लेंगे ॥ २ ॥

बड़ी मुश्किल है—दिल एक और उनके हाव भाव कटाक्ष अनेक। वे तो सिरसे पाँव तक अदायें ही हैं—मैं अपना एक दिल किस-किसको दूँ, बड़ी दिक्क़तमें हूँ ॥ ३ ॥

जिन्होंने दुनियासे हाथ धो लिये हैं वे आपादमस्तक शुद्ध हो गये हैं, उन्हें इस बातकी ज़रूरत नहीं कि वे सिरसे पाँव तक पानी बहा कर स्नान करें ॥ ४ ॥

हमारे शरीरमें जितने घाव हों हमें उतनाही अधिक आनन्द आता है, इसलिए हम मित्रके प्रेमरूप कृपाणके घाव फिर सिरसे पैर तक क्यों न खायें ? ॥ ५ ॥

(४७) सफ़्हे-ये दहर पै यक दिल न हुआ एक से एक।
दिलके दो हर्फ़ हैं सो भी हैं जुदा एक से एक ॥ १ ॥

संसारमें कोई दिल भी दूसरे से मिल कर एक न हुआ।

दिलमे दो अक्षर हैं पर वे भी आपसमें नही मिलते। एक दूसरे से अलग रहते हैं। उर्दू लिपिमें दिल लिखते समय एक अक्षर दूसरेसे नहीं मिलता अर्थात्—),

(४८) हज़ार दुश्मने जाँ से है एक दोस्त बुरा।
जो पूछा कौन है वह ? मैं कहूँ हज़ारमें दिल ॥ १ ॥

मेरा एक दोस्त ऐसा है जो हज़ार प्राणघातक दुश्मनोंसे भी बुरा है। जानते हो वह कौन है ?—दिल। यह बात मैं हज़ार आदमियोंके समक्ष कहनेको तय्यार हूँ ॥ १ ॥

(४९) उस हूरवश का घर मुझे जन्नत से है सिवा।
लेकिन रक़ीब हो तो जिहन्नुम से कम नहीं ॥ १ ॥

ऐ ज़ौक़ किसको चश्मे हिक़ारत से देखिए।
सब हमसे हैं ज़ियादा कोई हमसे कम नहीं ॥ २ ॥

मुझे अपने मित्रका घर स्वर्गसे कम नहीं है बशर्ते कि वहाँ कोई मेरा प्रतिद्वन्द्वी न हो। नहीं तो, वह नरक से भी गया गुज़रा है ॥१ ॥

ऐ ज़ौक़, संसार में किसको घृणा की दृष्टि से देखा जाय—यों सभी हमसे बढ़कर हैं कोई भी हमें अपनेसे कम दिखाई नहीं देता ॥ २ ॥

इसी तरहका का एक क़त्ता—शायद कविवर रिन्द का—हमें याद है। उसमें बड़ी अच्छी तरह से अपनी अवस्था पर सन्तोष

करनेका उपदेश दिया गया है। पाठकोंके चिनोदके लिए हम उसे यहाँ उद्धृत किये देते हैं,—

जो जिसके हक़ में समझा वह बेहतर बना दिया।
दारा कोई, किसी को सिकन्दर बना दिया॥
ख़ालिक़ ने एक एकसे बेहतर किया है ख़ल्क़।
मुझको फ़क़ीर तुझको तवंगर बना दिया॥
ग़ाफ़िल मुक़ामे रश्क नहीं जाये शुक्र है।
सौ से बुरा तो एक से बेहतर बना दिया॥

(५०) गुल परेशाँ हुआ हँस-हँसके चमनमें आख़िर।
देख ऐ ग़ुंचा यहाँ ख़न्दाज़नी ख़ूब नहीं॥ १॥
ताबे दंदाँ न दिखा बज़्ममें तू हँस-हँस कर।
कोई खा जाये जो हीरे की कनी ख़ूब नहीं॥ २॥
ख़लिशे ख़ार का खटका है बग़लमें मौजूद।
देख गुल, दावये नाज़ुकबदनी ख़ूब नहीं॥ ३॥

कली, मेरी बात सुन। फूल हँस-हँस कर बागमें ख़ूब परेशान हो चुका है। बिखरकर पृथ्वी पर लेट गया है। इस लिए तू भी ज़ियादा हँसना मत। भला॥ १॥

हमें एक सोरठा याद है। हमारे एक मित्र और सहाध्यायी कहते हैं कि वह सोरठा हमारे स्वर्गीय पिताजी का ही बनाया हुआ

है। उसमे भी यही भाव कितनी अच्छी तरह व्यक्त किया गया है—सहृदय पाठक—देखिए—

कली भली दिन चार जबलग मुँह मूँदी रहे।

देत डार से डार फूली सहत न फूल की ॥ १ ॥

अपने दाँतोंकी चमक भरी सभामें तू हँस-हँस कर मत दिखा। देख उनकी चमक पर लट्टू हो कर कोई हीरे की कनी न खा ले। क्या चक्कर पर चमकदार, उपमा है॥ २ ॥

फूल, तुम बहुत सुकुमार हो—ठीक है। पर अपनी नज़ाकत पर भूल कर भी गर्व न करना। तुम्हारी बग़लमें ही काँटा मौजूद है। उससे डरते रहना। तुम्हारी नज़ाकत का शत्रु तुम्हारी बग़लमें ही बैठा है ॥ ३ ॥

(५१) ख़ुरशेद वार देखते हैं सब को एक आँख।
रोशन ज़मीर मिलते हर नेको बद से हैं ॥ १ ॥
दो गालियाँ कि बोसा ख़ुशीपर है आपकी।
रखते फ़क़ीर काम नहीं रद्दो कद से हैं ॥ २ ॥
जितने मज़े हैं याँ रविशे नशये शराब।
हो जाते बे मज़ा हैं जो बढ़ जाते हद से हैं ॥ ३ ॥
जाँ दादगाने इश्क़से पूछो फ़ना की राह।
इसमें जनाब ख़िज़्र अभी ना बलद से हैं। ॥ ४ ॥
दिलके वरक़ पे सब्त हैं सद मुहर दाग़े इश्क़।
हम करते ज़ौक़ इश्क़ का दावा सनद से हैं ॥ ५ ॥

सूर्य्य का प्रकाश सभी पर एकसा पड़ता है। अच्छे और बुरे, नीचे और ऊँचे सभीके घरोंको वह एकसा प्रकाशित करता है। इसी तरह अच्छे आदमी सभीसे—नेकोबद्—से मिलते हैं ॥ १ ॥

यह आपकी खुशी पर है चाहे बोसा दीजिए या गाली? हम फ़क़ीर हैं हमें इस झगड़ेसे मतलब नहीं। जो दोगे लेलेंगे ॥ २ ॥

संसारमें सब तरहके नशे शराबके नशेकी तरह जब हदसे बढ़ जाते हैं—बिगड़ जाते हैं ॥ ३ ॥

प्रेमके मार्गमें जान खोने वाले मनुष्योंसे मरनेके रास्तेको बातें पूछो। ये अमर देवता—इस विषयमें निरे अज्ञ हैं ॥ ४ ॥

मेरे दिलके पृष्ठ पर प्रेमके दागोंकी बीसियों मुहरें लग रही हैं। हमारा प्रेमका दावा प्रमाणपूर्वक है—उसके लिए हम छाप लगा प्रमाण पत्र अपने पास रखते हैं ॥ ५ ॥

(५२) इस गुलिस्ताने जहाँ में क्या गुले इशरत नहीं।
सैर के क़ाबिल है यह पर सैर की फ़ुरसत नहीं ॥ १ ॥
ख्वाह गर्दिश है ज़मीं को ख्वाह फिरता है फ़लक।
पर हमें ज़ेरे फ़लक सर मंज़िले राहत नहीं ॥ २ ॥
मुँह में गर पानी चुआवे यार अपने हाथ से।
मर्ग की तलखी से शीरीं तर कोई शर्बत नहीं ॥ ३ ॥

दिल वह क्या जिसको नहीं तेरी तमन्नाये विसाल।
चश्म वह क्या जिसको तेरे दीद की हसरत नहीं ॥ ४ ॥
कहते हैं मरजायँ गर छुट जायँ ग़मके हाथ से।
पर तेरे ग़ममें हमें मरनेकी भी फ़ुरसत नहीं ॥ ५ ॥
एक दिल और उस पै इतने बारे ग़म अज़ारे दिल।
और इस ताक़त पै ऐसा कोई बे ताक़त नहीं ॥ ३ ॥

इस वाटिकारूप संसारमें सुख रूप फूल न हो यह बात नहीं। यह वाटिका सैर के क़ाबिल ज़रूर है पर यहाँ सैर की फ़ुरसत नहीं ॥ १ ॥

चाहे ज़मीन घूमती हो चाहे आस्मान—इसमें हमें वक्तव्य नहीं, पर इस आस्मानके नीचे हमें आराम कभी नहीं मिलता ॥ २ ॥

मरते समय यदि मेरा मित्र अपने हाथसे मेरे मुँह में पानी चुआवे तो मृत्युकी कड़वाहट से बढ़कर संसारमें कोई मीठी चीज़ नहीं है ॥ ३ ॥

वह दिल ही नहीं जिसमें तेरे पानेकी इच्छा नहीं और वह आँख ही नहीं जिसे तेरे दर्शनकी लालसा नहीं ॥ ४ ॥

लोग कहते हैं मर कर ग़म से छूट जाते हैं पर तेरे ग़ममें हम इतने फँसे हुए हैं कि हमें मरनेकी भी फ़ुरसत नहीं है ॥ ५ ॥

दिल एक है—राम अनेक हैं। दिल, तेरा क्या कहना। तू 'वज्रा-दपि कठोर' और 'कुसुमादपि मृदु' है॥ ६॥

(५३) वक़्ते पीरी शबाबकी बातें।
ऐसी हैं जैसी ख़्वाबकी बातें॥ १॥

फिर मुझे ले चला उधर देखो।
दिले ख़ाना-ख़राबकी बातें॥ २॥

देख ऐ दिल न छोड़ क़िस्स-ये ज़ुल्फ़।
कि यह हैं पेचो ताबकी बातें॥ ३॥

वृद्धावस्थामें जवानीकी बातें ऐसी मालूम होती हैं जैसी कि सपनेकी बातें होती हैं। उस समय शारीरिक निर्बलताके कारण जवानीकी बातोंमें सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि, वे हुई थीं या नहीं। स्वप्नकी बातें भी छायाकी तरह स्मृति पटलपर रह जाती हैं और उनके सच होनेमें भारी सन्देह रहता है॥ १॥

फिर मुझे उस ओर ले चला। घर-बिगाड़ू दिलकी बातें तो देखो॥ २॥

मन, उसके केशपाशके क़िस्से मत छेड़—ये बातें सीधी नहीं बहुत पेंच की हैं। इसलिए, इन में पड़ना ठीक नहीं॥ ३॥

५४) दुनिया से मैं अगर दिले मुज़तरको तोड़ दूँ।
सारे तिलिस्म वहम मुक़द्दर को तोड़ दूँ॥ १॥

मैं काट दूँ पहाड़ को पत्थर को तोड़ दूँ।
पर क्योंकि ग़ैर से बुते-काफ़िर को तोड़ दूँ ॥ २ ॥
साक़ी लड़ाइयों से तेरी चाहता है जो।
बाहम लड़ा के शीशा ओ सागर को तोड़ दूँ ॥ ३ ॥
अहसाने नाख़ुदा के उठाये मेरी बला।
कश्ती ख़ुदा पै छोड़ दूँ लङ्गर को तोड़ दूँ ॥ ४ ॥
नाज़ुक कलामियाँ मेरी तोड़ें उदू का दिल।
मैं वह बला हूँ शीशे से पत्थर को तोड़ दूँ ॥ ५ ॥
फिर उस मिज़ को याद करे दिल तो दिलमें ज़ौक़।
नश्तर चुभो के मैं सरे नश्तर को तोड़ दूँ ॥ ६ ॥

संसार में लगे हुए मन को यदि मैं तोड़ दूँ तो धोखे और बुराईमें डालने वाले इस प्रपञ्च को ही तोड़ डालूँ। संसार-पाश में बद्ध मनको तोड़ना मुश्किल है। प्रपञ्च को तोड़ना कुछ कठिन नहीं ॥ १ ॥

मैं पहाड़ को भी काट सकता हूँ, पत्थर को तोड़ सकता हूँ पर मेरे मित्रका हृदय जो दूसरे से लगा हुआ है—उसे हाय किसी तरह नहीं तोड़ सकता ॥ २ ॥

साक़ी, मद्य पिलाने वाले, तेरी झिक-झिक से जी में यह आता है, कि बोतल और प्यालों को आपस में लड़ा कर तोड़ दूँ ॥ ३ ॥

माँझी के अहसान मेरी बला उठाये—मैं तो अपनी नाव

को इश्वर का नाम लेकर छोड़ दूँगा और उसका लङ्गर तोड़ दूँगा ॥ ४ ॥

मेरी सुकुमार बातें शत्रु का दिल तोड़ देती हैं। मैं भी क्या बला हूं कि शीशेसे पत्थरको तोड़ देता हूँ ॥ ५ ॥

मेरा दिल उसकी पलक को यदि याद करे तो मैं उसमें नश्तर चुभो कर उसकी नोक उसमें तोड़ दूँगा। ऐसा करनेसे पलक को याद करनेमें उसे जो खटक होती थी उसका थोड़ा-बहुत मज़ा उसे आजायगा ॥ ६ ॥

(५५) रुकाव ख़ूब नहीं तबा की रवानी में।
कि बू फ़िसाद की आती है बन्द पानी में ॥ १ ॥
लगाते तोहमते गिरियाँ हैं दिल जलोंको तेरे।
यह हैं वही जो लगाते हैं आग पानी में ॥ २ ॥
नहीं खिज़ाब से मतलब मगर ये मूए सफ़ेद।
सियाहपोश हुए मातमे जवानी में ॥ ३ ॥

तबीयतका रोकना ठीक नहीं। बन्द पानीमें फ़िसाद की बू आने लगती है। तबीयत और पानीका चलते रहना ही अच्छा—इनका रुकना अच्छा नहीं ॥ १ ॥

तेरे दिल जलोंको लोग रोनेकी तोहमत लगाते हैं। इन लोगोंकी बात पर मत जा। ये तो पानीमें आग लगाने वाले हैं ॥ २ ॥

बुढ़ापे में मेरे बालोंने क्यों खिज़ाब किया है जानते हो?

वे काला बनना नहीं चाहते। वे तो जवानीके मातम में काली पोशाक पहन रहे हैं ॥ ३ ॥

(५६) तू कहे ग़ुंचा कि उस लब पै धड़ी ख़ूब नहीं ।
चुप ! कि मुँह छोटासा और बात बड़ी ख़ूब नहीं ॥१॥
ख़ूबरूओंसे बहुत आँख लड़ी पर अफ़सोस ।
क़िस्मत ऐ ज़ौक़ ! कहीं अपनी लड़ी ख़ूब नहीं ॥ २ ॥

कली, तूने क्या कहा कि मेरे मित्रके होठों पर मिस्सी की धड़ी (रेखा) अच्छी तरह नहीं जमी—अरी बावली ज़ुबान बन्द कर, तेरे छोटेसे मुँहमें यह बडी बात शोभा नहीं देती ॥ १ ॥

अपनी आँख तो सुन्दरियोंसे ख़ूब लड़ी पर अफ़सोस—ऐ ज़ौक़, अपना भाग्य कहीं अच्छी तरह नहीं लड़ा ॥ ५ ॥

(५७) वह देखें बज़्म में पहले किधर को देखते हैं ।
मुहब्बत आज तेरे हम असर को देखते हैं ॥ १ ॥
ये लोग क्यों मेरे ऐबो हुनर को देखते हैं ।
उन्हें तो देखो ज़रा वह किधर को देखते हैं ॥ २ ॥
है उनकी चश्म की गर्दिश पै गर्दिशे आलम ।
जिधर हो उनकी नज़र सब उधरको देखते हैं ॥ ३ ॥
अरक़ के क़तरे नहीं देखते हैं उस रुख़ पर ।
सितारे धूप में हम दोपहरको देखते हैं ॥ ४ ॥

जहाँ के आइने से दिलका आईना है जुदा ।
उस आइने में हम आईनेगर को देखते हैं ॥ ५ ॥

हमें आज प्रेम का प्रभाव देखना है। देखें, सभामें वह आज किधर को देखते हैं ॥ १ ॥

ये लोग क्यों मेरे दोषोंका विवेचन करते हैं—देखना तो यह है कि वे किधरको देखते हैं ॥ २ ॥

उनकी आँखके चलन पर ही संसार चलता है—जिधर उनकी दृष्टि पड़ती है संसार की दृष्टि उसी ओर को उठ जाती है ॥ ३ ॥

उसके उज्ज्वल चेहरे पर पसीनेकी बूंदें नहीं हैं—वे तो धूपमें तारे दिखाई दे रहे हैं ॥ ४ ॥

संसारके आईनेसे मन--मुकुर अलग चीज़ है। उसमें एक विशेषता है। उस आदर्शमें, आदर्श का बनाने वाला भी दिखाई दे जाता है ॥ ५ ॥

(५८) सोहबते अहले सफ़ासे तीरह दिल कब साफ़ हों।
ज़ंग से आलूदा हो जाता है आहन आब में ॥ १ ॥
ज़ौक़ तू इस बहर में ऐसे गुले मज़मूँ बहा।
जा बजा लग जाये एक फूलोंका खिरमन आबमें ॥२॥
भूल मत इल्मे किताबी पर कि आख़िर कब तलक।
नाव कागज़ की बहे ऐ तिफ़्ले कोदन आबमें ॥ ३ ॥

सत्पुरुषोंके सङ्गसे कलुषितहृदय पुरुषोंकी चित्तशुद्धि नहीं होती। दृष्टान्त—लोहा यदि पानी में डाला जाय तो साफ होनेकी बजाय उसमें ज़ङ्ग लग जाती है ॥ १ ॥

ऐ ज़ौक़, तू इस छन्द (बहर) में फूल जैसे नाज़ुक शेर लिख कि लोगोंको मालूम हो पानीमें फूलोंका ढेर लग रहा है। बहर छन्द और नदी दोनोंको कहते हैं। इस लिए यहाँ यह शब्द लुत्फ़ दे रहा है ॥ २ ॥

पुस्तकोंके ज्ञान पर ही बिल्कुल भरोसा मत रख, कागज़ की नाव पानीमें कब तक बहेगी। किसी संस्कृत कविका एक श्लोक है—

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु च यद्धनम्।
उत्पन्नेषु च कार्य्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥३॥

कण्ठ की गई विद्या और अपनी गाँठ का पैसा ही समय पड़े पर काम देता है। पुस्तकोंमें रक्षित और दूसरेके हाथ में दिया हुआ धन उस समय बेकार है।

(५९) वह दिन है कौन सा कि सितम पर सितम नहीं।
गर ये सितम है रोज़ तो इक रोज़ हम नहीं ॥ १ ॥
मजनूँके पेचो ताब से ताबे रक़म नहीं।
है ज़ुल्फ़े यार हाथ में मेरे क़लम नहीं ॥ २ ॥
मुश्किल है मेरे अहदे मुहब्बत का टूटना।
ऐ बेवफ़ा ! यह तेरी खुदा की क़सम नहीं ॥ ३ ॥

मसूबा मारनेका मरे करते हैं हरीफ़।
और मुझमें मिस्ल बाज़िये शतरंञ्ज दम नहीं ॥ ४ ॥
हाथ आये किस तरह से दिले गुमशुदा का खोज।
है चोर वह कि जिस पै किसीका भरम नहीं ॥ ५ ॥
जाता है आँखें बन्द किये ज़ौक़ तू कहाँ।
यह राह कूचे यार है राहे अदम नहीं ॥ ६ ॥

हमारे ऊपर नित नये सितम तू करता है—कोई दिन भी ख़ाली नहीं जाता। यदि इसी तरह ये सितम रोज़ होते रहे तो एक दिन हम नहीं होंगे ॥ १ ॥

मेरे दिमाग़में मज़मूँ भी ख़ूब पेंचीले आते हैं—इतने पेंचीले कि उनको लिखना मुश्किल हो जाता है। मेरे हाथमें मानों बजाय कलमके यार की ज़ुल्फ़ है ॥ २ ॥

मेरे प्रेमके प्रण का टूटना बहुत कठिन है। ऐ प्रेमाचार-विहीन, वह तेरी "ख़ुदा की क़सम" नहीं है कि इधर की और उधर टूट गई ॥ ३ ॥

मेरे शत्रु मुझे क्यों मारने का सङ्कल्प कर रहे हैं। मुझमें तो शतरञ्ज की बाज़ी की तरह 'दम' ही नहीं है ॥ ४ ॥

खोये दिल का पता लगे तो किस तरह लगे? जो चोर है उस पर कोई चोरीका भ्रम नहीं करता। बड़ी मुश्किल तो यह है ॥ ५ ॥

ऐ ज़ौक़, आँखें बन्द किये तू कहाँ जा रहा है? मालूम

है ? यह यार को पेंचीदा गली है—परलोक का शून्य मार्ग है। हज़रत यहाँ समझ कर चलिए ॥ ६ ॥

(६०) हमसे ज़ाहिरो पिनहाँ जो उस ग़ारतगर के झगड़े हैं।
दिलसे दिल के झगड़े हैं नज़रोंसे नज़र के झगड़े हैं ॥ १ ॥

जीतेहो जी क्या मुल्के फ़नामें साथ बशर के झगड़े हैं।
मरके इधरसे जबकि छुटे तो जाके उधरके झगड़े हैं ॥ २ ॥

कैसा मोमिन कैसा काफ़िर कौन है सूफ़ी कैसा रिन्द।
सारे बशर हैं बन्दे हक़ के सारे शर के झगड़े हैं ॥ ३ ॥

एक एक ज़ोरो सितम पर उसके सौ सौ दाग़ दिल हैं गवाह
हम जो उससे झगड़े हैं हक़ साबित करके झगड़े हैं ॥ ४ ॥

ग़म कहता है दिलमें रहूं मैं जलवये जाना कहता है मैं !
किसको निकालूँ किसको रक्खूँ ! यह तो घरके झगड़े हैं

बहरमें मोती पानी पानी लाल का दिल खूँ पत्थरमें।
देखो ! लबो दन्दांसे तुम्हारे लालो गुहरके झगड़े हैं ॥ ६ ॥

हज़रते दिलका देखना आलम हाथ उठाये दुनियासे।
पाँव पसारे बैठे हैं और सर पै सफ़रके झगड़े हैं ॥ ७ ॥

ज़ौक़ मुरत्तिब क्योंके हो दीवाँ शिकवये फुर्सत किससे करें।
बाँधे गलेमें हमने अपने आप ज़फ़रके झगड़े हैं ॥ ८ ॥

हमारे और उसके झगड़े बाहरी और भीतरी—सभी

के हैं। यह दिलके दिलसे और आँखके आँखसे झगड़े हैं। इसी लिये बाहरी और भीतरी हैं॥ १॥

इस मर्त्य लोकमें जीतेही जीके झगड़े हों यह बात नहीं। मरनेके बाद यहाँके झगड़े ज़रूर खत्म हो जाते हैं—पर उधरके झगड़े बाकी रह जाते हैं।

कौन अच्छा है, कौन बुरा है, कौन भक्त है और कौन मस्त है—भाई सभी उसके बन्दे हैं—ये सारे झगड़े द्वेषके हैं॥ ३॥

उसके एक एक सितमके लिये मेरे पास सौ सौ दिलके दाग गवाह रूपसे मौजूद हैं। हमारी उसकी—लड़ाई हक़की लड़ाई है। लड़ाईके हमारे पास काफी प्रमाण—और वे भी लिखित—मौजूद हैं॥ ४॥

ग़म और उसकी शोभा आपसमें लड़ रही हैं। ये दोनों मेरे दिलमें रहनेके लिए लालायित हैं। अब मैं इनमेंसे किसको निकालूँ किसको रक्खूँ, ये तो घरके झगड़े हैं। इनका निबटारा आसान काम नहीं॥ ५॥

समुद्रमें मोती शर्मसे पानी पानी हो रहा है—तेरे दाँतों को आभा को देखकर—और लालका दिल पहाड़ की गुफामें स्पर्धाके मारे खून हो गया है—तेरे ओठों को सुर्खी को देखकर। देख तो सही तेरे दाँत और होठोंके कारण मोती और लाल किस बुरी दशामें हैं॥ ६॥

हज़रत दिलको देखिये कि संसारसे हाथ उठाये पर मज़े

पाँव पसारे बैठे हैं सिर पर जो सफ़र सवार है उसका
कुछ भी फ़िक्र नहीं है ॥ ७ ॥

ज़ौक़, तुम्हारे दीवान का पूरा होना मुश्किल है ।
रसत ही कहाँ है । फ़ुरसत न होनेकी किसीसे शिकाय
नहीं कर सकते । क्योंकि तुमने स्वयं अपने गलेमें 'ज़प
ड़े बाँध रक्खे हैं ॥ ८ ॥

) कह दे शबनमसे न भर सीमाब गुलके कान में ।
बुलबुले अहवाले दिल कुछ ऐ सबा कहने को हैं ॥ १ ॥

देखे आईने बहुत बिन ख़ाक है नासाफ़ सब ।
है कहाँ अहले सफ़ा अहले सफ़ा कहनेको हैं । २ ।

देख तो ले पहुँचे किस आलमसे किस आलममें है ।
नालहाये दिल हमारे नारसा कहने को हैं ॥ ३ ॥

मिट गये जौहर वफ़ाके उठ गये सब अहले दिल
अब वफ़ा है नामको और बावफ़ा कहने को हैं ॥ ४ ॥

है सफ़ाये दिल वही जिसमें अयाँ हो शक्ले यार ।
यूँ तो आईनोंके दिल भी बा सफ़ा कहनेको हैं ॥ ५ ॥

क्या तमाशा है कि उनके कानमें उट्ठा है दर्द ।
हम जो आये दर्दे दिल अपना ज़रा कहनेको हैं ॥ ६ ॥

ऐ प्रात: समीर, तू ओससे कह दे कि वह फूलके क
(चाँदी की तरह सफ़ेद—अतएव सीम आब) न

क्योंकि बुलबुलें कुछ अपने दिलकी बात फूलसे कहना चाहती हैं। 'सीमाब' यहाँ श्लिष्ट है ॥ १ ॥

बहुतसे आईने देखे पर वे बिना खाकके सब मैले थे। साफ़ तबीयत के लोग कहाँ हैं उनका नाम सिर्फ "कहने को" ॥ २ ॥

मेरी आहें कहाँ से कहाँ पहुंच गयीं—कुछ ठीक है। फिर भी मूर्ख लोग उन्हें अब भी "नारसा" "नहीं पहुंचनेवाली" कहते हैं ॥ ३ ॥

सहृदय पुरुष उठ गये, सहृदयता भी उन्हीं के साथ चली गई—अब तो वफ़ा और बावफ़ा केवल शब्दोंमें ही रह गये हैं—'श्रुतौसज्जनतास्थिता' ॥ ४ ॥

चित्त की सफ़ाई वही है जिसमें मित्र का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़े। यों कहनेको तो आइनों के दिल भी "बासफ़ा" हैं ॥ ५ ॥

क्या तमाशा है कि उनके कान में आज ही दर्द उठ खड़ा हुआ। हम खूब अपना दर्द दिल उनसे कहने आये ॥ ६ ॥

(६२) करे वहशत बयाँ चश्मे सखुन गो इसको कहते हैं।
यह सच कहते हैं सर चढ़ बोले जादू इसको कहते हैं ॥ १ ॥
सवाले बोसे को टाला जवाबे चीने अबरू से।
बराते आशिक़ाँ बरशाख़ आहू इसको कहते हैं ॥ २ ॥
अजल सौ बार आई ज़ौक़ पर जब तक न वह आये।
न पाया दम निकलने मेरा क़ाबू इसको कहते हैं ॥ ३ ॥

उसकी आँख साफ साफ कह रही है कि उसे अपने प्रेमिक से घृणा है। जादू वही है जो सर चढ़ कर बोले। उसकी आँख उसीके मनकी छिपी हुई बातको किस सफाईसे कह रही है ॥ १ ॥

हमारी बोसेकी प्रार्थना पर उन्होंने किस बुरी तरह से भौं चढ़ाई है। प्रेमियोंकी बरात हिरनके सींगपर होती है— इस बातका अर्थ हमें आज मालूम हो गया ॥ २॥

मृत्यु ने हमपर एक दो धावे नहीं किये—किये सैकड़ों पर जब तक वे न आये दम नहीं निकला। आपने देखा मेरा क़ाबू—मेरा अधिकार ॥ ३ ॥

(६३) अनक़ाकी तरह ख़ल्क़से अज़लत नशीं हूँ मैं।
हूँ इस तरह जहाँ में—कि गोया नहीं हूँ मैं ॥ १ ॥
मैं वह नहीं कि तुम हो कहीं और कहीं हूँ मैं।
मैं हूँ तुम्हारा साया जहाँ तुम वहीं हूँ मैं ॥ २ ॥
हूँ तायरे ख़याल न पर हैं न मेरे बाल।
पर उड़के जा पहुँचता कहींसे कहीं हूँ मैं ॥ ३ ॥

मैं अन्क़ा पक्षीकी तरह संसारसे अलग रहता हूँ। मैं संसारमें इस तरह से रहता हूँ कि गोया नहीं रहता हूँ ॥ १ ॥

मैं तुमसे अलग रहनेवाला नहीं। मैं छाया की तरह तुम्हारे साथ हूँ ॥ २ ॥

मैं विचार रूप पक्षी ऐसा हूँ कि न मेरे बाल हैं न पर—

किन्तु मुझमे शक्ति इतनी है कि क्षण भरमे मै कही का कही उड़ कर पहुँच सकता हूँ ॥ ३ ॥

(६४) दिल का यह हाल है फटजाय है सौ जाय से और ।
अगर एक जाय से हम उसको रफ़ू करते हैं ॥ १ ॥

हमारे दिलकी भी विचित्र दशा है। उसे एक जगह से जोड़ते हैं तो और सौ जगह से फट जाता है ॥ १ ॥

(६५) याँ लब पै लाख लाख सखुन इज़्तराब में ।
वाँ एक खामुशी तेरी सबके जवाब में ॥ १ ॥
खत देख कर वह आये बहुत पेंचो ताब में ।
क्या जाने लिख दिया उन्हें क्या इज़्तराब में ॥ २ ॥

घबराहट में आकर मैं हज़ारों बातें कह रहा हूँ और वे है कि मेरी सब बातों के जवाब में एक सीधी चुप साधे बैठे है ॥ १ ॥

मेरे खत को देख कर वह बहुत पेंच तावमें आ गये—न मालूम मैं उन्हें इज़्तराब में क्या कुछ लिख गया ? २ ॥

(६६) अबके दिल लेलूँ तो फिर उस बुते क़ातिलको न दूँ ।
जान दूँ माल दूँ ईमान दूँ पर दिलको न दूँ ॥ १ ॥
चार टुकड़े करो दिल के कि नहीं हो सकता ।
लबको दूँ रुख़ को न दूँ ज़ुल्फ़ को दूँ तिलको न दूँ ॥ २ ॥
अबकी बार किसी तरह से दिल वापिस ले लूँ तो फिर

उसे किसी तरह न दूँगा. चाहे जान, माल और ईमान सभा देना पड़े—पर दिल न दूँगा ॥ १ ॥

मेरे दिलके चार टुकड़े करो—यह नहीं हो सकता कि उसके ओंठ को दिल दूँ पर कपोलोंको न दूँ— ज़ुल्फ़ को दूँ पर चेहरे के तिल को न दूँ। यथाविभाग ही देना चाहता हूँ ॥ २ ॥

(६७) दाना ख़िरमन है हमें क़तरा है दरिया हमको।
आये है जुज़ में नज़र कुल का तमाशा हमको ॥ १ ॥

आन पहुँचो सरे गर्दाबे फ़ना किश्तिये उम्र।
हर नफ़स बादे मुख़ालिफ़ का है झोंका हमको ॥ २ ॥

हर क़दम पाँव पै सर रखते हैं ख़ारे सरे दश्त।
ऐ जनूँ! तूने तो काँटों पै घसीटा हमको ॥ ३ ॥

टपका मिज़गाँ से लहू होके जिगर आख़िरकार।
एक मुद्दत से इसी टपके का डर था हमको ॥ ४ ॥

तू हँसी से भी न कह मरते हैं हम भी तुम पर।
मारही डालेगा बस रश्क हमारा हमको ॥ ५ ॥

दाने में ढेर और बूँद में हम समुद्र देखते हैं। हम व्यष्टि में समष्टि का तमाशा देखनेवाले हैं—तंग-नज़र नहीं हैं ॥ १ ॥

हमारी उम्र की नाव अब मृत्युरूप भँवर के निकट ही

पहुँच गई है। इस समय हमारा श्वास जो आता जाता है वह तूफ़ानका झोका है ॥ २ ॥

जङ्गल में क़दम क़दम पर काँटे अपना सिर हमारे पाँव पर रखते हैं। ऐ जनूँ, तू हमें क्यों काँटोंपै घसीटता है। मतलब यह कि इस प्रतिष्ठाके हम पात्र नहीं—हमें यह प्रतिष्ठा देना मानो काँटोंपै घसीटना है ॥ ३ ॥

पलकसे ख़ूनके रूपमें अन्ततोगत्वा जिगर टपक ही पड़ा। हमें एक मुद्दत से इस 'टपके' का डर था ॥ ४ ॥

यह मैं ख़ूब जानता हूँ कि तू हँसी में मुझ से कह रहा है कि हम तुझ पर आशक्त हैं पर ऐसा न कर। यह सुनकर मुझे स्वयं अपने ऊपर डाह होता है। इसी विषयपर महाकवि ग़ालिब ने भी क्या अच्छा कहा है:—

देखना किस्मत कि आप अपने पै रश्क आजाये है।
मैं उसे देखूँ भला कब मुझसे देखा जाये है ॥ ५ ॥

(६८) रिन्दे ख़राब हालको ज़ाहिद न छेड़ तू।
तुझको पराई क्या पड़ी अपनी नबेड़ तू ॥ १ ॥

नाख़ुन ख़ुदा न दे तुझे ऐ पञ्जये जनूँ।
देगा तमाम अक़्ल के बख़िये उधेड़ तू ॥ २ ॥

जो सोतो भीड़ अपने सरो शोर से जगाये।
दर्वाज़ा घर का उस सगे दुनिया से भेड़ तू ॥ ३ ॥

भक्त, तू बुरे हाल मस्तोंको मत छेड़—तुझे दूसरोंसे मतलब—भय्या तू अपनी ही नबेड़ ॥ १ ॥

ऐ जनूँ—ईश्वर तुझे नाख़ुन न दे—नहीं तो अक़्ल को ब (सीवन) उधेड़ देगा। दिमाग़को नष्ट कर डालेगा ॥ २ ॥

जो माँगनेवाला अपने शोरसे सोते हुओं को जगाये—ऐसे दुनियाके कुत्ते से तू अपना द्वार भेड़ ले—बन्द कर ले

(६९) मौत ही से कुछ इलाजे दर्दे फ़ुर्क़त हो तो हो।
ग़ुस्ल मैयत ही हमारा ग़ुस्ले सेहत हो तो हो ॥ १ ॥

रात एक पगड़ी हुई थी मैकदह में रहने मै।
ज़ौक़ वह तेरी ही दस्तारे फ़ज़ीलत हो तो हो ॥ २ ॥

वियोग जन्य व्याधि की चिकित्सा मौत से ही कुछ सकती है। मौत का स्नान ही हमारी आरोग्यता का हो सकताहै ॥ १ ॥

रात एक पगड़ी भी मद्यपानालय में दिखाई पड़ी थी शराब के हक़में रहन हुई थी—ज़ौक़ मालूम होता है कि वह ही "आचार्य्यत्व की पगड़ी" थी ॥ २ ॥

(७०) अगर ज़ख़्म सीने से फाहा उठाऊँ—
तो ख़ुरशेदे महशर को मैं तप चढ़ाऊँ।
अगर दुम्बये दाग़ दिलको दिखाऊँ—
तो सुबह-ये क़यामत का मुँह दम मैं फ़क़ हो ॥ १ ॥

किताबे मुहब्बतमें ऐ हज़रते दिल
बताओ कि तुम लेते कितना सबक़ हो।
कि जब आनकर तुमको देखा तो वह ही—
लिये दस्ते अफ़सोस के दो वरक़ हो॥ २

यदि मैं अपने दिलसे फाहा उठा दूँ तो प्रलय के सूय को भी बुख़ार चढ़ आये और जो अपने दिलके दाग़ों को दिखा दूँ तो प्रलय के प्रातःकाल का मुँह उनको देखकर फीका पड़ जाय॥१॥

ऐ दिल यह तो बताओ कि प्रेमकी पुस्तकमें तुम कितना पाठ लेते हो? मैंने जब देखा तुम्हारे हाथमें दुःख-शोक के दो ही पृष्ठ पाये॥ २॥

(७१) बजा कहे जिसे आलम उसे बजा समझो।
जु़बाने खल्क़को नक्क़ार-ये ख़ुदा समझो॥ १॥

जिसको संसार ठीक कहे वह ठीक ही है। संसार की आवाज़ ईश्वर के डङ्केकी आवाज़ है॥१॥

(७२) कहे एक जब सुन ले इन्सान दो।
कि हक़ने ज़ुबाँ एक दी कान दो॥१॥

मनुष्यको चाहिये सुने अधिक—कहे कम। ईश्वर ने इसीलिये कान दो पर ज़ुबान एकही बनाई है॥ १॥

(७३) मरते हैं तेरे प्यारसे हम और ज़ियादा।
तू लुत्फ़ में करता है सितम और ज़ियादा॥ १॥

सर कटके सर अफ़राज़ है हम और ज़ियादा।
जूँ शाख़ बढ़े होके क़लम और ज़ियादा ॥ २ ॥
वह दिलको चुराकर लगे जब आँख चुराने—
यारोंका गया उन पै भरम और ज़्यादा ॥ ३ ॥
है बाग़े जहाँ में तुझे गर हिम्मते आली।
कर गरदने तसलीम को ख़म और ज़्यादा ॥ ४ ॥
लेते हैं समर शाख़ समर वरको झुका कर।
झुकते हैं सख़ी वक़्त करम और ज़्यादा ॥ ५ ॥
जो कुञ्जे क़नाअतमें हैं तक़दीर पर शाकिर।
है ज़ौक़ बराबर उन्हें कम और ज़्यादा ॥ ६ ॥

विरह-वेदना ही नहीं—जब मिलता है तब भी तू बिना दुःख दिये नहीं मानता। सच तो यह है कि तेरा प्यार भी दुःखों से मिला हुआ होता है ॥ १ ॥

सर कट जानेपर हम और ज़ियादा साहसी हो गये है—उस वृक्षकी शाखाकी तरह जो काटनेसे और बढ़ती है ॥ २ ॥

उन्होंने दिल तो चुरा ही लिया था पर अब आँख भी चुराने लगे—इसी लिये तो यारोंने उनपर सन्देह किया है ॥ ३ ॥

यदि तू साहस रखता है तो खूब नम्र बन। फलदार वृक्ष को देख। लोग फल तोड़ते समय उसको झुका लेते हैं और वह फल देता है और झुकता है। महामना भर्तृहरि भी कितना अच्छा कहते हैं:—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै—
नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ४—५ ॥

जो सबसे अलग रहते और भाग्यपर विश्वास रखते हैं उन्हें थोड़ा बहुत बराबर है, जो कुछ मिल जाता है उसीपर वे सन्तोष कर लेते हैं ॥ ६ ॥

(७४) ज़ूं पञ्ज शाख़ा तू न जला उंगलियाँ तबीब ।
रख रखके नब्ज़ आशिके तफ़ता जिगर पै हाथ ॥१॥

छोड़ा न दिलमें सब्र न आराम ने शिकेब ।
तेरी निगाह ने साफ़ किया घर के घर पै हाथ ॥२॥

ऐ ज़ौक़ मैं तो बैठ गया दिल को थाम कर ।
इस नाज़से खड़े थे वह रक्खे कमर पै हाथ ।३।

वैद्यराज, क्यों आप अपने हाथ को पञ्जशाखे की तरह दिल जले आशिक़की नाड़ीपर रखकर वृथा जलाते हैं ? आपकी चेष्टा से उसे आराम तो होना नहीं ॥ १ ॥

तेरी दृष्टिने सन्तोष, शान्ति और आराम सभी कुछ नष्ट कर दिया—उसने सारे घर पर ही हाथ साफ कर दिया ॥ २ ॥

किस अन्दाज़ से वह कमर पर हाथ रक्खे थे—ज़ौ
उन्हें देखकर दिल थाम कर बैठ गया——नहीं तो दि
ही था ॥ ३ ॥

(७५) तू जान है हमारी और जान है तो सब कुछ
ईमान की कहेंगे ईमान है तो सब कुछ ॥ १ ॥

अर्थ स्पष्ट ।

(७६) तेरे कूचेको वह बीमारे ग़म दारुलशफ़ा समझे
अजल को जो तबीब और मर्ग को अपनी दवा समझे ॥

सितमको हम करम समझे जफ़ाको हम वफ़ा समझे ।
और इस पर भी न समझे वह तो उस बुतसे ख़ुदा समझे

तुझे ऐ सङ्ग दिल, आरामे जाने मुब्तला समझे ।
पड़ें पत्थर समझपर अपनी हम समझे तो क्या समझे ॥

वह अपने ख़ाकसारोंको गर अपना ख़ाके पा समझे ।
हम अपनी ख़ाकसारी अपने हक़में कीमिया समझे ॥ ४

हिसाब असला न पूछे मुझसे मेरे दिलके ज़ख़्मोंका ।
हिसाबे दोस्ताँ दर दिल अगर वह दिलरुबा समझे ॥

समझ ही में नहीं आती है कोई बात ज़ौक़ उसकी ।
कोई जाने तो क्या जाने कोई समझे तो क्या समझे ॥

जिस दुखियाने तेरे कूचे को स्वास्थ्य-निकेतन

उसने (पहले से ही) यमराज को हकीम और मृत्युको दवा समझ रक्खा था ॥ १ ॥

उसके कोप को हमने प्यार और उसके दिये दुःखोंको हमने सुख समझा। इस पर भी यदि वह न समझे तो उस को अब ईश्वर समझे ॥ २ ॥

ऐ पाषाण-हृदय, तुझे हमने अपने सुखोंका वर्द्धक समझा। हमारी बुद्धि पर पत्थर पड़ें हमने क्या उलटी बात समझी ॥ ३ ॥

यदि वह हम जैसे खाकसारोंको अपने पदकी धूलि समझे तो हम खाकसारीको निस्सन्देह अपने लिए रसायन समझें ॥ ४ ॥

तुझे मुझसे मेरे दिलके घावोंका हिसाब पूछने की कुछ भी ज़रूरत नहीं है—क्योंकि दोस्तोंका हिसाब दिल ही में रहता है ॥ ५ ॥

उसकी कोई बात—ऐ ज़ौक़, समझ में ही नहीं आती, इस लिए कोई जाने तो क्या जाने और समझे तो क्या समझे ॥ ६ ॥

(७७) कब हक़-परस्त ज़ाहिदे जन्नतपरस्त है।
हूरों पै मर रहा है यह शहवतपरस्त है ॥ १ ॥
दिल साफ़ हो तो चाहिये मानीपरस्त हो।
आईना खाक साफ़ है सूरतपरस्त है ॥ २ ॥
दरवेश है वही जो रियाज़त में चुस्त हो।
तारक नहीं फ़क़ीर भी राहत परस्त है ॥ ३ ॥

यह ज़ौक़ मै परस्त है या है सनम परस्त।
कुछ है बला से लेक मुहब्बत परस्त है॥ ४॥

कौन कहता है भक्त ईश्वरको भजता है वह तो मन मनमें 'स्वर्ग कामाय यजते'। स्वर्गकी अप्सराओं पर मर रहा है इस लिए भगवद्भक्त इन्द्रिय-दास है॥ १॥

मनके शुद्ध होने पर मनुष्यको भावुक दर्दमन्द होने को ज़रूरत है। आईना क्या खाक साफ़ है वह तो सूरतपरस्त है॥ २॥

वही फ़क़ीर है जो ईश्वर-भक्ति में रँगा हुआ हो। अन्यथा फ़क़ीर कहने को तो अपनेको त्यागी कहता है पर वास्तवमें सुखोंका दास है अकल साधु नहीं! दूसरोंको धोखा देनेके लिये साधु-वेश धारण किया है॥ ३॥

ज़ौक़ मद्यका भक्त है या यार का? बला से कुछ हो पर इसमें सन्देह नहीं कि वह प्रेमका भक्त है॥ ४॥

(७८) चाटे बग़ैर ख़ूँ कोई रहती है तेरी तेग़।
बेढब है इसको चाट सितमगर लगी हुई॥ १॥
बैठे भरे हुए हैं ख़ुमे मै की तरह हम।
पर क्या करें कि मुहर है मुँह पर लगी हुई॥ २॥
यह चाहता है शौक़ कि क़ासिद बजाय मुहर।
आँख अपनी हो लिफ़ाफ़ये ख़तपर लगी हुई॥ ३॥
ऐ ज़ौक़ इतना दुख़्तरे रिज़को न मुँह लगा।
छुटती नहीं है मुँहसे यह काफ़िर लगी हुई॥ ४॥

तेरी तलवार विना खून चाटे थोड़े ही मानती है। ऐ सितमगर, यह चाट इस को बहुत बेढब लग गई है ॥ १ ॥

हम शराबके घड़ेकी तरह भरे हुए बैठे हैं पर क्या करें कि हमारे मुँह पर "क़का" की मुहर लगी हुई है। कुछ कह नहीं सकते ॥ २ ॥

ऐ पत्रवाहक, जी तो यह चाहता है कि बजाय मुहर के पत्र पर अपनी आँख लगा दूँ ॥ ३ ॥

ऐ ज़ौक़, तू शराबको इतना मुँह मत लगा—यह क़ाफिर मुँह लग कर फिर नहीं छूटती ॥ ४ ॥

(७९) ज्यूँ तेग़ खुश ग़िलाफ निग़ह तेरी ऐ परी।
है दम बदम निकल के चमकती ग़िलाफ़ से ॥ १ ॥
लिखता है शैख़ मसल ये वहदते वजूद।
लेकिन दुई अयाँ है क़लमके शिगाफ से ॥ २ ॥
गुल हाये रंग रंगसे है रौनक़े चमन।
ऐ ज़ौक़ इस जहाँ की है ज़ेब इख़्तलाफ़ से ॥ ३ ॥

ऐ परी, तेरी दृष्टि अच्छे ग़िलाफ़ में रहने वाली तलवारकी तरह ज़रा ज़रा देरमें चमकती हुई बाहर निकलती है ॥ १ ॥

शेख़ जो जिस क़लम से अद्वैतवादकी पुष्टिमें ग्रन्थ लिखते हैं वह क़लम ही अपने शिगाफ़ से द्वैत भावको दिखा रही है ॥ २ ॥

रङ्ग बिरङ्गे फूलोंसे ही बाग़की शोभा है—इसी तरह ऐ